॥ ॐ ॥

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि

लेखक—

अगरचन्द नाहटा,

भँवरलाल नाहटा।

* ॐ *

श्री अभय जैन ग्रन्थमाला पुष्प १२ वां—

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि

लेखक—
अगरचन्द नाहटा,
भँवरलाल नाहटा।

प्रकाशक :—
शङ्करदान शुभैराज नाहटा
४ जगमोहन मल्लिक लेन,
कलकत्ता।

प्रथमावृत्ति } वि० सं० २००३ { मूल्य ।।)

अनुक्रमणिका

—:*:—

प्राक्कथन

परमपूज्य योगीन्द्र युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी बड़े दादा साहब के नाम से जैन जगत् में सुप्रसिद्ध हैं। आप असाधारण शक्तिसम्पन्न जैन शासन प्रभावक क्रान्तिकारी जैनाचार्य्य थे। आपकी वाणी में जादू एवं कार्यों में चमत्कार ओतप्रोत था। जिस समय जैन शासन में चैत्यवास का बोलबाला था, साधु समाज सुविहित विधिमार्ग से च्युत होकर शिथिलाचार के प्रवाह में प्रवाहित हुआ जा रहा था, राज्याश्रय प्राप्त कर उनकी और भी बन आई और सुविहित सच्चे साधुओं का नगर प्रवेश तक अशक्य हो गया था। उनके अनुयायी श्रावक आभ्यन्तरिक शुद्धि के राजमार्ग से हट कर बहिर्मुखी हो रहे थे। उस समय युग की पुकार एक महापुरुष के अवतार के लिये प्रतिध्वनित हो रही थी। श्री जिनेश्वरसूरिजी जैसे तेजोमय नक्षत्र ने इसी समय अपनी विद्वता एवं सच्चारित्र्य से पाटण के नरपति दुर्लभराज की सभा में सुविहित मार्ग का प्रकाश फैलाया। चैत्यवासियों की प्रबल पराजय हुई और उनके सङ्गठन में खलबली मच गई। श्री जिनवल्लभसूरिजी ने नवाङ्गी वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरिजी के सदुपदेशों से प्रभावित हो कर चैत्यवास का परित्याग कर उसके उन्मूलन में सारी शक्ति लगा दी। क्षेत्र लगभग

तैयार हो चुका था अब उसके लिए केवल जल सिंचन और बीज भर की जरूरत रह गयी थी इस बीजारोपण का श्रेय हमारे चरित्रनायक श्री जिनदत्तसूरिजी को प्राप्त हुआ।

प्रत्येक सत्कार्य में विघ्न बाधाएं उपस्थित होती रहती हैं और निर्मल धारा में विकार आता रहता है जिसका परिष्कार करना आवश्यक हो जाता है। उसके बिना वह सड़न बढ़ते बढ़ते सारे स्वच्छ जलको अपेय बना देती है। इसी प्रकार धार्मिक विचार धाराओं एवं आचरणाओं में मनुष्यके चिर अभ्यस्त प्रमत्त संस्कारोंके कारण विकृति आ जाती है। पर साधारणतया मनुष्य अनुकरण प्रिय और रूढि प्रवाह का अनुसरण करने वाला होता है। अतः उस विकार के सुधार एवं विरोध की शक्ति क्वचित् असाधारण व्यक्ति में ही पायी जाती है। वर्षाकाल के नदी प्रवाह में बह जाना सहज है पर उसका सामना कर आगे बढते जाना अवश्य ही असाधारण कार्य्य है। श्री जिनदत्तसूरिजी के समय चैत्यवास का प्रवाह बड़े जोरों से बह रहा था। अनेक विद्वान् उसे ठीक न समझने पर भी परम्परागत प्रवाह में प्रवाहित हो रहे थे पर सूरिजी ने अपने असीम आत्मबल का परिचय देकर तत्कालीन परिस्थिति पर विजय प्राप्त की। आपके सदुपदेशों से प्रभावित होकर अनेकों चैत्यवासी आचार्यों ने चैत्यवास का परित्याग कर आपकी शरण ली। आपने

युग के वातावरण को बदल डाला अतः आपका युगप्रधान पद सर्वथा सार्थक है।

इसी युगमें कलिकाल सर्वज्ञ गुर्जरेश्वर कुमारपाल प्रतिबोधक महान् साहित्यकार श्री हेमचन्द्राचार्य (जन्म सं० ११४५) दिगम्बर वादी कुमुदचन्द्र को शास्त्रार्थ में परास्त करने वाले वादिदेवसूरि (जन्म सं० ११४३) समर्थ टीकाकार श्रीमलयगिरि, कवि चक्रवर्त्ती श्रीपाल आदि अनेक विद्वान जैन शासन की शोभा बढा रहे थे। यह समय जैनों के लिए स्वर्ण-युग था।

हमारा पूर्व संकल्प—

खरतर गच्छ के प्रसिद्ध दादा संज्ञक चार महान् जैनाचार्यों का जीवनचरित्र प्रकाशित करने का हमारा चिर मनोरथ था। पश्चानु-पूर्वी क्रमानुसार सम्राट अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि, दादा श्री जिनकुशलसूरि और मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि ग्रन्थत्रय प्रकाशित हो चुके हैं*। अब यह चौथा ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए अपने पूर्व संकल्प की सिद्धि का हमें अपार हर्ष है।

---

* इन चरित्रों के आधार से उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी महाराज़ ने संस्कृत में श्लोकबद्ध चरित्रत्रय निर्माण करके हमारे लिखित ग्रन्थों की प्रामाणिकता स्वीकार कर हमारा उत्साह बढाया है।

प्रस्तुत ग्रंथ की जन्म कथा—

जैसा कि दादा श्रीजिनकुशलसूरि और मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि ग्रन्थ के किञ्चित् वक्तव्य में लिखा गया है—प्रस्तुत चरित्र का लेखन युगप्रधान श्री जिनचंद्रसूरि ग्रन्थ के पश्चात् ही हो चुका था। इसका निमित्त कारण श्री जिनदत्तसूरि चरित्र निर्णायक समिति, फलौदी के द्वारा प्रकाशित एक विज्ञप्ति थी जिसमें ता० २१-७-३४ के पूर्व सूरिजी का जीवनचरित्र लिख भेजने का निवेदन था। उक्त विज्ञप्ति के अनुसार 'गणधर सार्द्ध शतक बृहद्वृत्ति' के आधार से ऐतिहासिक खण्ड लिखा जा चुका था पर पट्टावलियों में उल्लिखित सूरिजी के चमत्कारों के ऐतिहासिक तथ्योंका निर्णय करने की समस्या के लिए वह इतने दीर्घकाल तक रुका पड़ा रहा। इसी बीचमें हमने प्राप्त समस्त सामग्री का मनन कर डाला और जेसलमेर की साहित्यिक यात्रा भी इसी मुख्य उद्देश्य से की गई क्योंकि हमें जेसलमेर के ज्ञानभण्डार में बहुत कुछ नवीन ज्ञातव्य प्राप्त होने की विशेष संभावना थी। परन्तु वहां जाने के बाद ऐसा कोई भी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक साधन प्राप्त न हुआ जो हमारे अभिलषित विषय पर प्रकाश डाल सके। अन्ततः चमत्कारिक प्रवादों की उलझन को किसी भी तरह सुलझाकर जीवनचरित्र प्रकाशित कर डालनेका निश्चय किया और वह जिस रूपसे शक्य हुआ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

घटना क्रम पर विचार—

सूरिजी के जीवन चरित्र की सब से प्रामाणिक सामग्री गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति* में पायी जाती है, जो सूरिजी के स्वर्गवास के ८४ वर्ष बाद ही पं० सुमतिगणि ने पूर्णदेव गणि आदि वृद्ध सम्प्रदाय से ज्ञात कर बनाई थी। हमने उसी क्रमसे सूरिजी के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का संकलन किया है पर उपर्युक्त वृत्ति में घटना क्रम ऐतिहासिक दृष्टिकोण से संवतानुक्रम लिखा नहीं ज्ञात होता। पं० सुमतिगणि का उद्देश्य गुरुदेव के जीवनवृत्त की प्रमुख घटनाओं को एकत्र मात्रकर देने का मालूम होता है क्योंकि कालक्रम की दृष्टि से कई घटनाएं जो पीछे लिखी हैं वे पहले घटित हुई ज्ञात होती है। और कई पहिले लिखी घटनाएं पीछे हुई होंगी इसका आभास कई अन्य विश्वस्त सूत्रों से पाया जाने पर भी साधनाभाव से हम उनका कालक्रम से वर्गीकरण नहीं कर सके। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले पाठकों के समक्ष यह स्पष्टीकरण कर देना हमें आवश्यक प्रतीत हुआ है।

सूरिजी के रचित ग्रन्थ—

हमारा विचार था कि सूरिजी के समस्त ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद

---

* वर्द्धमानसूरिजी से लगाकर श्री जिनदत्तसूरिजी तकके चरित्रों को इसी वृत्तिसे जिनपालोपाध्यायने अपनी गुर्वावली में उद्धृत किया है।

के साथ इसी ग्रंथ में प्रकाशित किये जायं। इसी उद्देश्य से हमने अप्रकाशित समस्त ग्रन्थों की प्रतिलिपि भी जेसलमेर भंडार आदि से प्राप्त करली थीऔर उनका अनुवाद कार्य भी कविवर श्रीकवीन्द्रसागर जी द्वारा प्रारंभ हो गया था और चैत्यवन्दन कुलक, उपदेश कुलक, चर्च्चरी, काल-स्वरूप कुलक, उपदेश रसायन, इन पांच ग्रंथों का संस्कृत छाया व हिन्दी अनुवाद हमें प्राप्त हो गया है। संदेहदोलावली का भी कुछ अनुवाद आपने किया है पर यह कार्य यहीं रुक जाने से हमें जहां तक समस्त ग्रन्थों का अनुवाद न हो जाय, अपने मनोरथ को स्थगित रखना पड़ा है। फिर भी अप्रकाशित ग्रन्थों को तो प्रकाशित कर ही देना चाहिए इस दृष्टि से परिशिष्ट नं० २ में आपकी प्राप्त अप्रकाशित मूल कृतियाँ दे दी गई हैं। भविष्य में सब ग्रन्थों के अनुवाद हो जाने पर उन सब का संग्रह ग्रंथ प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायगा। जिससे सूरिजी की अक्षरदेह-कृतिया, विचारधारा, उपदेश, तत्कालीन वातावरण आदि अनेक बातों का ज्ञान सर्वसाधारण के लिये सुलभ हो जायगा।

सूरिजी की मन्त्र पुस्तिका—

मंत्र विज्ञान में सूरिजी की असाधारण गति थी। उनकी अखण्ड साधना के फलस्वरूप आपके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द मंत्रवत् चमत्कारी होता था। सूरिजी के लिखित एक ताड़पत्रीय मन्त्र पुस्तक कुछ वर्ष पूर्व उपाध्याय श्री सुखसागरजी महाराज के कथनानुसार

पालीताना में विक्रयार्थ आई थी पर वह रु० ५०००) में भी विक्रेता ने उन्हें न देकर अधिक मूल्य में अन्यत्र बेच दी। कतिपय प्राप्त फुटकर पत्रोंमें कई मंत्र आदि जिनदत्तसूरिजी की आम्नाय के नामोल्लेखसहित पाये जाते हैं। इससे भी ऐसी कोई पुस्तक होने की पुष्टि होती है अतः जिस किसी सज्जन को आपश्री की उपर्युक्त प्रति व अन्य कोई भी आपकी नवीन रचना प्राप्त हो तो हमें सूचित करने का सादर अनुरोध है।

सूरिजी के चित्र—

जेसलमेर दुर्गस्थ श्री जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार की कई ताड़पत्रीय प्रतियों के काष्ट-फलक पर सूरिजी के चित्र प्राप्त हुए हैं, जिनमें से एक 'अपभ्रंश काव्यत्रयी,' 'युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि,' 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' और 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' में पूर्व प्रकाशित हो चुके हैं और २ अन्य चित्र 'भारतीय विद्या' भाग ३ में मुनि जिनविजयजी ने प्रकाशित किये हैं। इन तीनों चित्रोंको इस ग्रन्थ में दिया जा रहा है। आपश्री का चौथा चित्र त्रिभुवनगिरि के महाराजा कुमारपाल के साथ होने का उल्लेख 'जेसलमेर भांडागारीय ग्रन्थानां सूची'* में पाया जाता है पर हम जब जेसलमेर गये

* नरपति श्री कुमारपाल भक्तिरस्तु। पण्डित ब्रह्मचन्द्र, सहणपाल, अनंगं, गुणसमुद्रसूरयः (जैसलमेर ज्ञान भंडार सूची, बड़ौदा पृ० ३१ प्रति नं० २४१ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूल)

थे, बहुत तलाश करने पर भी यह पट्टिका नहीं मिल सकी थी यद्यपि पीछे से वह प्राप्त भी हो गई है पर इसके लिए कई पत्र देने पर भी अद्यावधि हमें उसका फोटो प्राप्त नहीं हो सका हमारी बहुत इच्छा थी कि उसे भी हम इस ग्रन्थ में प्रकाशित कर दें पर ऐसा न कर सकने का हमें पूर्ण खेद है।

सूरिजी की चादर–

जेसलमेर के बड़े उपाश्रय में सूरिजी की चादर विद्यमान है जिसकी बड़े भक्ति भाव से पूजा व सुरक्षा होने का पूर्ण प्रबन्ध है।

विशेष ज्ञातव्य–

१ सूरिजी के जिन शिष्योंका नामोल्लेख इस पुस्तक के पृ० ३५, ३६ में आया है, उनके अतिरिक्त शान्तिमती गणिनी का उल्लेख जेसलमेर भंडार की ताड़पत्रीय प्रति से नकल की हुई प्रकरण संग्रह पत्र ५१ (वं० नं० २२) वाली नई प्रति में आता है। यथाः—

"सं० १२१५ माघ सुदि ६ बुधे श्री जिनदत्तसूरि शिष्यण्यां शान्तिमयी गणिन्यां संज्ञाय पुस्तिका"।

इसकी मूल प्रति उपर्युक्त भण्डार में हमारे देखने में नहीं आई अतः उसका अन्वेषण आवश्यक है।

२ श्री जिनदत्तसूरि के भक्त श्रावकों का कुछ उल्लेख पृ० ६६, ६७ में किया गया है, उनके अतिरिक्त आपकी कृपा से सुखी होने वाले गोल्ल श्रावक का उल्लेख सं० १२८२ में लिखित सटीक हैमानेकार्थ संग्रह की पुष्पिका में आता है। ये धर्क्कट वंश के पार्श्वनाथ के पुत्र थे। सूरिजी के भक्त होने पर इनका दारिद्रय नष्ट हो गया था और धर्ममार्ग में विशेष अग्रसर हो कर मरुकोट में सिंहबल राजा के समय में चन्द्रप्रभ स्वामी का उत्तुंग जिनालय बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा इनके पट्टधर मणिधारी श्री जिनचंद्रसूरिजी ने की थी। इस गोल्ल श्रावक ने रोगियों के लिये औषधालय आदि खोलकर परोपकार के बहुत से कार्य्य किए थे। इस उल्लेख वाली पुष्पिका, मुनि जिनविजयजी सम्पादित "जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह के पृ० १० में छपी है"।

३ श्री जिनदत्तसूरिजी की स्वर्गतिथि आषाढ शुक्ला ११ प्रसिद्ध है। पर जिनपालोपाध्याय कृत गुर्वावली की प्रति में आषाढ़ वदि ११ लिखा है, अतः इस सम्बन्ध में विशेष प्रमाणों को खोजना आवश्यक है।

४ श्री जिनदत्तसूरि की कतिपय आचरणाओं के सम्बन्ध में शत-पदी में उल्लेख है, एवं जीवनी की कुछ बातों का विकृत वर्णन 'प्रवचन परीक्षा' में पाया जाता है। इसी के आधार से लब्धिसागर

ने अपने खण्डनात्मक ग्रन्थ में, सागरानंदसूरिजी ने इर्यापथिकी षट्त्रिंशिका की प्रस्तावना आदि में और ज्ञानसुंदरजी ने अपने कई ग्रंथों में विरोधात्मक बातें लिखी है। पर यह समस्त साहित्य ईर्ष्या व द्वेष बुद्धि से लिखे जानेके कारण हमें इसके सम्बन्ध में विचार करना अनावश्यक प्रतीत हुआ।

५ श्री जिनदत्तसूरिजी प्रतिष्ठित कही जाने वाली कई मूर्तियों के लेख प्रकाश में आये हैं। वे और अधिक परीक्षणीय प्रतीत होते हैं। श्री जिनदत्तसूरिजी के प्रतिष्ठित बहुत से मन्दिर एवं बिम्बोंका उल्लेख प्रस्तुत चरित्र में आया है उनके लेखों के अन्वेषण की परम आवश्यकता है।

६ पाठकों को स्मरण रहना चाहिए कि पृ० ५ में पंजिका की जो व्याख्या श्री हेमचन्द्रसूरिजी महाराज ने की है, यद्यपि वह व्याकरण ग्रंथ पर चरितार्थ होती है परन्तु बाद में मालूम हुआ कि यह एक बौद्ध न्याय का ग्रंथ है।

सूरिजी सम्बन्धी स्तुति स्तोत्र—

जैन समाज में सूरिजी की जितनी प्रतिष्ठा, भक्ति, बहुमान है उतना अन्य किसी भी आचार्य का नहीं है। आपके भक्त श्रावकों ने सैकड़ों स्थानों पर गुरु-मन्दिर बनवाकर उनमें आपकी मूर्तिएं एवं पादुकाएं प्रतिष्ठित की हैं जिनकी बड़े ही भक्ति भावसे स्तवना

एवं पूजा लाखों जैन प्रति दिन किया करते हैं। भारत के प्रायः सभी प्रसिद्ध स्थानों में जहां जैनों का निवास है 'दादावाड़ी' के नाम से आपके मन्दिर अवस्थित हैं। भक्तोंके मनोवाञ्छित पूर्ण करने में आप साक्षात् कल्पतरु हैं।

जैन कवियोंने आपकी स्तवना में कई स्तुति, स्तोत्र, छन्द, गीत, लघुरास आदि सैकड़ों की संख्या में बनाये हैं* उनमें से कुछ दादाजी की स्तवनावली आदि में प्रकाशित हो गए हैं पर अभी अप्रकाशित साहित्य का ढेर लगा पड़ा है। उन्हें संग्रह कर प्रकाशित करने की इच्छा रहते हुए भी इस लघु ग्रंथ में तो अधिक साहित्य देना छोटे सिरपर बड़ी पगड़ी रखने जैसा प्रतीत कर हमें अपनी इच्छा का संवरण करना पड़ा है। इस में परिशिष्ट नं० ३ में केवल ४ रचनाएं दी गईं हैं। जिनमें से प्रथम जेसलमेर भंडार की ताड़पत्रीय प्रति से ली गई है वह प्रति त्रुटित होने के कारण अधूरी ही दी जा सकी है। किसी सज्जन को इसकी पूरी प्रति मिले तो हमें सूचित करने की कृपा करें।

आभार प्रदर्शन—

प्रस्तुतः चरित्र लेखन एवं संपादन में जिन जिन विद्वज्जनों की सहायता प्राप्त हुई है उन सब का हार्दिक आभार माने बिना हम

---

* इनमें से कविपल्ह कृत पट्टावली षटपद्, ज्ञानहर्ष कृत छप्पय, जिनदत्तसूरि स्तुति आदि हमने अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह मे प्रकाशित की हैं।

नहीं रह सकते। पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी जिन्होंने हमारे प्रस्तुतः ग्रंथ में प्रकाशित करने के लिए भारतीय विद्या तृतीय खण्ड में प्रकाशित जैसलमेर ज्ञानभण्डार स्थित काष्टपट्टिकोपरि उल्लिखित चित्र प्रगट हुए है, वे चित्र छपवा भेज कर हमारे कार्य में योगदान दिया है। एवं बीकानेर महराजकुमार साहब के प्रधान अध्यापक श्रीयुत् पंडितवर्य्य दशरथजी शर्मा एम, ए० डी० लिट्, के विशेष आभारी है जिन्होंने राजकीय कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी प्रस्तावना लिख देने का कष्ट किया है। साहित्यरत्न मुनिराज श्रीकान्तिसागरजी महाराज ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है, इसके सम्बन्ध में विशेष लिखकर अनात्मीयता प्रगट करना नहीं चाहते। आशा ही नहीं पर हमें पूर्ण विश्वास है कि हमारे अग्रिम साहित्योद्धार कार्य में इन एवं अन्याम्य विद्वानों द्वारा अवश्य ही सभी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

तुलसी जयन्ती,
सं० २००३

अगरचन्द्र नाहटा,
भँवरलाल नाहटा।



स्वर्गीय सेठ शंकरदानजी नाहटा

जन्म सं० १९३०　　　　निधन सं० १९९९

स्वर्गीय पूज्य शंकरदानजी नाहटा
का
जीवन परिचय

प्रत्येक मानव की विशेषता उसके गुणोंपर निर्भर है पर किसी भी एक गुण का समुचित विकाश होने पर उसका जीवन एक आदर्श उपस्थित कर देता है। जिस व्यक्ति में अधिकाधिक गुणों का समुचित विकाश हो पाया हो उसकी जीवनी दूसरों के लिये पथप्रदर्शक बन जाती है और उसे महापुरुष की संज्ञा दी जाती है। स्वर्गीय पूज्य पिताश्री कुछ ऐसे ही गुणों के पुञ्जभूत महापुरुष थे। मुझे उनकी छत्र-छाया में रहनेका विशेष अवसर मिला है अतः पाठकों की जानकारी के लिये संक्षेप में आपका परिचय उपस्थित करता हूं।

जन्म व विवाह—

आपका जन्म बीकानेर से १८ मील दूर अवस्थित डॉडूसर गाँव में नाहटा जेतरूपजी के पुत्र राजरूपजी के घर में सं १९३० के मिती आषाढ बदि ८ बुधवार को हुआ था। ग्रामीण जीवन के सुखद वातावरण में बृद्धि पाते हुए योग्य वय में आवश्यक शिक्षा प्राप्त की। नउ दिनों बालविवाह की प्रथा विशेषतः प्रचलित थी और आप

अपने सद्गुणों से अपने पिता,माता, भाई, भगिनी आदि प्रियजनों के अत्यन्त प्रीतिपात्र थे अतः १२ वर्ष की अवस्था में ही सं० १६४२ मिती वैशाख कृष्णा ५ को आपका शुभविवाह आपके ननिहाल लूणकरणसर में शहर-भारणी आदि कार्यों द्वारा प्रसिद्धिप्राप्त सेठ नन्दराम जी बोथरा के सुपुत्र खेतसीदासजी की ज्येष्ठ पुत्री चुन्नी बाई के साथ हो गया। बाल्यकाल से ही आप बड़े परिश्रमी और साहसी थे। ग्राम में रहने के कारण खेतीबाड़ी और व्यवहारिक कार्यों में योग्यता कर ली।

व्यापार प्रवेश–

आपके चाचा देवचंदजी और उनके पुत्र भीमसिंहजी एवं मोतीलालजी बीकानेरमें रहने लग गये थे और वहां हुण्डी चिट्ठीके लेन-देन का सराफा व्यापार बड़े पैमाने में खोल दिया था। सैकड़ों गावोंसे इस व्यापार का घनिष्ट सम्बन्ध था। उन्होंने पूज्य पिता श्री को बहुत योग्य समझकर बीकानेर में लाकर इस व्यापार का सारा ज्ञान उन्हें भली भांति करा दिया। व्यापारपटुता प्राप्त होनेपर आप अपने बाबा उदयचंद जी द्वारा स्थापित दुकान-गवालपाड़ा में जो कि बीकानेर से १६०० मील दूरवर्ती :आसाम प्रान्त में है, सं० १६५० के आश्विन सुदि १० को रवाना होकर पधारे। यहां की दुकान सं० १८६५ के लगभग जब कि यातायात के साधन बहुत विकट एवं विषम थे, उदयचंदजीने प्रबल साहस के साथ गवालपाड़ा जाकर स्थापित

की थी और २२ वर्ष जैसे दीर्घकाल तक वहीं रहकर इसकी साख-प्रतिष्ठा बढाई थी। उनके लघुभ्राता और चरित्रनायक के पिता सेठ राजरूपजी ने भी ११ वर्ष की लम्बी मुसाफिरी करके अपनी नीति निपुणता, समयज्ञता और मिलनसारता से इस फर्म की काफी उन्नति की। इसके पश्चात् आपने पधार कर वहां के व्यापार तंत्रकी बागडोर संभाली और क्रमशः उन्नति करते हुए व्यापार का विस्तार किया।

साहस और सेवा—

संवत् १६५४ में गवालपाड़ा में एक भयानक भूमि-कम्प हुआ। वहाँ के लोगों के लिये उसने प्रलयकाल का रूप उपस्थित कर दिया। मकान भूमिशायी हो गये, रास्तों में जमीन फटकर गहरी दरारें पड़ गईं। पृथ्वी के अन्दर से जल निकलने लगा और ऊपर से वर्षा होने लगी। सर्वत्र जल जलाकार होगया, हवा तूफान और कड़ाके की शरदी पड़ने लगी। कहांतक लिखा जाय इसके अनुभवको करने वाले ही जानते हैं। धनमाल की तो बात ही क्या, प्राणों के लाले पड़ रहे थे। कमजोर हृदय वाले भयभीत होकर अब क्या करें? कहां जावें मरण आगया है, कहने लगे तब आप उन्हें ढाढ़स बंधाकर साहस के साथ पहाड़ पर ले गये। पर पहाड़ पर ठंड बहुत कड़ाके की थी, वर्षा में सब लोग कांपने लगे और भूख से व्याकुल हो गये। तब आपने कई साथियों के साथ हाथ में बांस लेकर जीवन मरण की

कोई परवाह न करते हुए जनता की रक्षा के हेतु पहाड़ से नीचे आकर सबकी दुकानें संभाली। संयोग से उस समय एक दुकान में किसी माङ्गलिक प्रसंग से सीरा रंधा हुआ पड़ा था उसकी कड़ाही को ले जाकर सबको खिलाया। दबी हुई दुकानों से कुछ मारकीन के थान निकाल कर ऊपर ले गये और उसके टुकड़े फाड़ फाड़ कर यह कहते हुए बांट दिये कि लो "जीवो तो यह वेष्टन है और मरो तो कफन है" इस सेवा से लोग बड़े सन्तुष्ट हुए और आपने असीम पुण्योपार्जन किया। यह भूमिकम्प कई दिन जारी रहा था।

आसाम प्रान्त में आगत जैनों ने अपने धार्मिक प्रेम का प्रतीक पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर गवालपाड़ेमें भी स्थापित किया था, भूमिकम्प से वह धराशायी हो गया पर भगवान पार्श्वनाथ का असीम चमत्कार ही समझिये, मूर्ति ज्यों की त्यों सब सामान के साथ सुरक्षित पाई गई, इससे लोगों को बड़ा हर्ष हुआ और भक्ति बढ़ी। फलतः भूमिकम्प के बंद हो जानेपर मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया गया और इसकी प्रतिष्ठा सं० १९६८ में पू० जयचंदजी यति द्वारा करवाई गई। आपका विचार था कि वहां पर मन्दिर के उपयुक्त विशाल मूर्त्ति प्रतिष्ठित की जाय और इसके लिये बहुत स्थानों में मूर्त्ति को तलाश करने के लिये भ्रमण कर बीकानेर के कँवला गच्छीय श्रीपूज्य जी से प्रतिमा लेना तै भी कर लिया था पर रात्रि के समय भगवान पार्श्वनाथ की निषेधाज्ञा होने से वह विचार स्थगित रखना पड़ा। उक्त प्रतिष्ठा में आपका सहयोग उल्लेखनीय था।

मंदिर का निर्माण करना कोई बड़ी बात नहीं है पर उसकी व्यवस्था के सम्बन्ध में दीर्घ दृष्टि से विचार करने वाले विरले ही होते हैं इसी कारण बहुत से मंदिरों की व्यवस्था पीछे से बिगड़ जाती है। आपने इस बात का अनुभव करते हुए गवालपाड़ा मंदिर के लिए अपने व्यक्तित्व से सब लोगों को समझा बुझाकर इस मंदिर की व्यवस्था के लिए बड़ा ही सुन्दर प्रबन्ध कर दिया, जिससे किसी व्यक्ति को बोझा न मालूम हो और कार्य भी सुचारु रूप से चल सके। वह व्यवस्था यह थी कि वहां सरसों की आमदनी बहुत होती थी अतः उस पर ≶) आना सैकड़ा बित्ती (धार्मिक लाग) बांध दी, आगे चलकर जब सरसों की आमदनी कम होकर कुस्टा जोर से आने लगा तो वह (वित्ती) कुस्टे पर भी लागू कर दी गई इससे सहज ही में मन्दिरजी, ठाकुरवाड़ी, रामदेवजी व शनिजी के मंदिर के सारे खर्च चलने के अतिरिक्त हजारों रुपये जमा हो गए। यह आपकी दूर-दर्शिता का ही सुफल था।

व्यापार विस्तार—

व्यापार की मूल भित्ति प्रामाणिकता और सद्व्यवहार पर ही अवलम्बित है। आपने अपने व्यापारतंत्र को इन सूत्रों से ऐसा संचालित किया कि आज भी आपके जितने फर्म हैं सभी की छाप-प्रतिष्ठा इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि माल बेचनेवाले दूसरों से अधिक

मूल्य पाने पर भी आपके फर्म को कम मूल्य में ही देने को राजी होते है। क्योंकि जबान की सच्चाई, तोल मापकी प्रामाणिकता और किसी भी तरह के झूठे झमेले न करके उनके प्रति सद्व्यवहार किया जाता है। झमेला पड़ने पर वजन की सही जांच के लिए इस फर्म के काँटे, बटखरे ले जाकर निर्णय किया जाता है और हर एक व्यक्ति के हृदय में आपके फर्मों के प्रति सद्भाव और श्रद्धा है। अतः आपकी गद्दियें बड़ी गद्दी के नामसे एवं प्रामाणिकता के लिए प्रसिद्ध हैं।

गवालपाड़े का पौधा तो आपश्री के बाबाने लगाया था, पर आपके समय में वह खूब फलाफूला और उसकी शाखा का विस्तार दिनों-दिन बढ़ने लगा। सं० १९५८ में गवालपाड़े से १० मील चापड़ नामक स्थान में, सं० १९६५ में बोलपुर में, सं० १९७० में कलकत्ता, सं० १९८० के कार्तिक बदि १५ को सिलहट और सं० १९९१ में बाबूरहाट की दुकानों की स्थापना हुई। आपके स्वर्गवास के पश्चात् हथरस और अमृतसर में भी फर्म स्थापित हुए हैं। यह सब आपका ही पुण्यप्रभाव है।

सन्तति—

सुयोग्य पिता की सन्तान भी वैसी ही गुणवान् और योग्य हुआ करती है। सं० १९४९ में आपके प्रथम कन्या सोनकुंवर बाई, उत्पन्न हुई जो बहुत ही मिलनसार, धर्मिष्ठा और गृहकार्य निपुण थी। सं० १९५२ में भैरूँदानजी का, सं० १९५५ के चै० ब० ६ में

अभयराजजी का जन्म हुआ। स्वर्गीय अभयराजजी जैसे पुत्ररत्न विरले ही होते हैं। उन्होंने अपने सद्‌गुणों से सारे परिवार को ही नहीं जिस किसी से भी एक बार मिले, मुग्ध कर लिया था। इनकी जैसी विचारकता, धैर्य्य, सहनशीलता, सरलता और धर्मानुराग क्वचित् ही भाग्यशाली पुरुषों में पाये जाते हैं। आपका स्वर्गवास युवावस्था के प्रारंभ में ही सं० १९७७ मिती वै० कृ० ७ को जयपुर हो जाने से पिताजी एवं सारे परिवार पर वज्राघात सा हो गया और जीवनभर इस सुपुत्र के गुणों को लाख प्रयत्न करने पर भी वे भूल न सके थे। इनका संक्षिप्त परिचय 'अभयरत्नसार' जो आपकी स्मृति में प्रकाशित किया गया था, में दिया गया था। जिस ग्रंथमाला के १२ वें पुष्प के रूप में प्रस्तुत ग्रंथ प्रकाशित हो रहा है, यह ग्रंथमाला भी पिताजी ने इन्हीं की स्मृति में स्थापित की थी और आज आपके शुभ नाम से एक बहुत बड़ा संग्रहालय प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखकों के अथाह परिश्रम के द्वारा बीकानेर में स्थापित है जिसका संक्षिप्त परिचय "राजस्थान भारती" के प्रथमाङ्क में प्रकाशित है।

इनके पश्चात् सं० १९५८ में शुभैराजजी का जन्म हुआ जो बड़े साहसी और व्यापार कुशल हैं। सं० १९६० में मगनकुंवर का सं० १९६२ में मोहनलाल का और सं० १९६५ के मिती आसोज बदि १३ को लेखक का जन्म हुआ। सं० १९६७ मिती चैत्र बदि ४ को मेरे अनुज अगरचन्द ने जन्म ग्रहण किया, जिसके कार्य-

कलाप समस्त साहित्य संसार में प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार आपके ६ पुत्र और २ पुत्रियां हुईं जिनमें से सोनकुंवर, अभयराजजी और मोहनलाल स्वर्गवासी हो चुके हैं। सं० १६६८ के आश्विन कृष्णा १३ को आपके ज्येष्ठ पुत्र भैरूंदानजी के भँवरलाल नामक पुत्र हुआ जो साहित्यिक कार्यों में अगरचंद का सहयोगी है। इसके पश्चात् आपके अनेक पौत्र, पौत्रियें, दोहिता, दोहितीं, प्रपौत्र, प्रपौत्रियों का जन्म हुआ। संक्षेप में आपका पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी, समृद्ध और संपन्न रहा है।

पूज्य पुरुषों की सेवा—

भारतीय संस्कृति में अपने से बड़े सभी पारिवारिक लोग पूज्य माने जाते हैं और उनकी सेवा करना किसी भी सपूत के लिए आवश्यक माना जाता है। आपके जीवन में यह संस्कृति घुल मिल गई थी। आपने अपने से बड़े सभी पारिवारिक जनों का आदर किया और उनकी सेवा में तनिक भी आलस्य-प्रमाद पास न फटकने दिया। अपने पूज्य माता पिता के अतिरिक्त अपने चाचा, बड़े भाई, भौजाइयां आदि की महान् सेवा कर उनका जो आशीर्वाद ग्रहण किया वह अनुकरणीय है। अपने चाचा देवचन्दजी के पुत्र भीमसिंहजी व मोतीलालजी का तरुणावस्था में ही स्वर्गवास हो गया था, अतः आपने अपनी दोनों भौजाइयों की सारी जिन्दगी

तक बड़ी भारी सेवा बजाई। उनकी प्रत्येक आज्ञा को सिरोधार्य करना अपके जीवन का एक आवश्यक अंग हो गया था। अपने बड़े भ्राता दानमलजी की तो उन्होंने जैसी भक्ति की और आजीवन उनके वचनों को जिस तत्परता के साथ निभाया वा उनके सारे कार्यभार को स्वयं वहन कर उन्हें निश्चिन्त बनाया। कई बातों में अपनी अनिच्छा रहते हुए भी उनकी इच्छा और आज्ञा को प्राधान्य देकर सर्वदा उन्हें संतुष्ट रखने का प्रयत्न किया ये सब बातें किसी भी तरह भुलाई नहीं जा सकतीं। अन्त में उनके निःसन्तान होने पर अपने पुत्र (लेखक) को उनका दत्तक पुत्र बना कर उनका नाम कायम रखा। इसी प्रकार अपने ज्येष्ठ भ्राता लक्ष्मीचन्दजी की बहू की भी आजीवन सेवा की। उनकी पुत्रियों के विवाहादि का सारा कार्य बड़ी लगन से सम्पन्न किया और अन्त में उनके नाम को भी कायम रखने के लिए पहले अपने पुत्र अभयराजजी को और उनके स्वर्गवासी होने पर अपने बड़े पौत्र भँवरलाल को उनके गोद दिया।

अपने कौटुम्बिक लोगों के साथ ही नहीं पर अन्य सभी वयोवृद्ध एवं गुणज्ञों के प्रति आपकी पूज्य बुद्धि और सेवाभाव रहता था जिनके उदाहरणों :को संग्रह करने पर एक स्वतंत्र ग्रंथ तैयार हो सकता है। अपने से छोटे व्यक्तियों के साथ भी आपका व्यवहार बड़ा ही प्रेम और सहृदयता पूर्ण था।

धर्मानुराग—

मानव जीवन की सबसे बड़ी सार्थकता व्यक्ति के धार्मिक भावनाओं में अन्तर्निहित है। धर्म के बिना जीवन शून्य एवं विफल है। आपके धार्मिक संस्कार प्रारम्भ से ही अत्यन्त दृढ़ थे। नित्य प्रातःकाल शीघ्र उठ कर स्नानादि से निवृत होकर नियमित सामायिक और पूजापाठ करना आपके जीवन का एक आवश्यक अंग बन गया था, इसके बिना आप कभी मुंह में जल तक नहीं लेते थे। आपने अपने जीवन के अन्त तक इस नियम को निभाया। इसके अतिरिक्त प्रति दिन जिनदर्शन, धर्म गुरुओं से व्याख्यान श्रवण, समय-समय पर व्रत उपवासादि करना अपने जीवन को संक्रमित बनाना आदि अनेकानेक धार्मिक आचरणाओं के प्रति आपका पूर्ण अनुराग था। चतुर्दशी का व्रत-उपवास आपने दीर्घकाल तक पालन किया और उसको पालन करते हुए ही उसी तिथि को आपका स्वर्गवास हुआ था। रात्रि भोजन का तो आपको वर्षों से त्याग था।

आचार्य म० श्रीजिनकृपाचंद्रसूरिजी के सं० १९८४ में बीकानेर पधारने पर आपने उन्हें अपने स्थान में ही ठहरा कर बड़ी भक्ति से उनकी सेवा की। उनके उपाश्रय का निर्माण एवं ज्ञानभंडार की देखभाल आपने बड़ी तत्परता से की। इस प्रकार अन्य सुसाधुओं की भक्ति करने में भी आप सदा तत्पर रहा करते थे। श्रीजिनकृपाचंद्र

सूरि धर्मशाला के आप ट्रस्टी थे। इसी प्रकार बड़े उपाश्रय के ज्ञान-भंडार के वर्षों तक आप ट्रस्टी रहे। स्थानीय जै० श्वे० पाठशाला के आप सभापति थे। आपके स्वर्गवास के दिन पाठशाला बंद रही।

जिनहर्षकृत श्रावक की करणी का स्वाध्याय भी आप प्रायः किया करते थे और उसमें कथित आदर्शों के अनुसार आपका जीवन श्रावकोचित हो गया था। परस्त्री के तो आप सदा त्यागी ही रहे और अन्तिम जीवन में चतुर्थ (ब्रह्मचर्य) व्रत भी धारण कर लिया था। अन्य चार अणुव्रतोंका पालन भी आपका सहज संस्कार हो गया था। हिंसा, झूठ, चोरी और अतिशय लोभ के प्रति आपकी तीव्र घृणा थी।

तीर्थ यात्रा—

तीर्थंकरों आदि महापुरुषों के जीवन से संबंधित व अन्य प्रसिद्ध सभी जैन तीर्थों की आपने कई बार यात्रा की थी। कई बार यात्राओं में आप बहुत ही कष्ट सहते हुए अपने परिवार व अन्य लोगोंके साथ लम्बी लम्बी यात्राएं कीं और उन श्रद्धालु यात्रियोंकी व्यवस्था का सारा भार भी आपने अपने ऊपर लिया था। इस के द्वारा आपने अनेक आत्माओंके आशीर्वाद प्राप्त करते हुए पुण्योपार्जन किया था। आपके साथ गये हुए यात्री एवं मिलने वाले आज भी आपके नाम के याद आते ही गद्‌गद् हो जाते हैं। तीर्थस्थानोंके प्रति आप का हृदय बड़ा श्रद्धालु था। समयसुन्दरजी कृत शत्रुञ्जय रास व

तीर्थ यात्रा के स्तवनादि का आप प्रति दिन पाठ किया करते थे। अनेक तीर्थों व मन्दिरों के जीर्णोद्धार व सुव्यवस्था के लिए आपने स्वोपार्जित द्रव्य का अच्छा सद्व्यय किया था।

परोपकार—

प्रत्येक धर्म का आन्तरिक रहस्य सब जीवों के साथ मैत्री और और समान व्यवहार में ही छिपा है। दूसरों के जिस व्यवहार व कार्यकलापों के द्वारा हम सुख या दु;ख का अनुभव करते हैं वैसे ही हमारे कार्यों के द्वारा अन्य व्यक्ति भी सुख दुःख अनुभव करते हैं। इस भावना से ही अहिंसा, मैत्री प्रेम और परोपकार आदि सद् वृत्तियों का विकाश हुआ है। कहा भी है:—आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्" जैसा व्यवहार हम दूसरों से चाहते हैं वैसा ही व्यवहार हमें दूसरों के प्रति करना चाहिए। इस सिद्धान्त के अनुसार आप में परोपकार का सद्गुण बहुत अधिक मात्रा में विद्यमान था। जब कभी भी किसी व्यक्ति को आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक चिन्ताओंसे आप व्याकुल पाते तो आपका हृदय बरवस उसके कष्ट निवारण के प्रति आकर्षित हो जाता था। अनेक व्यक्तियों को कष्ट के समय आपने विविध :साहाय्य देकर उपकृत किया है। बाहर गांव के लोगों की आप में अत्यंत श्रद्धा थी और वे भरोसा करके अपना कार्य छोटा मोटा जो भी हो करने के लिए: निवेदन

करते तो आप अपना कार्य छोड़ कर भी तत्काल उनका कार्य कर देते।

नाड़ी और औषधि का आपको अच्छा ज्ञान था। कई रोगी आपके प्रयोगों व दवा से जीवन दान पा गये। म्यादी बुखार के तो आप विशेषज्ञ थे। सैकड़ों व्यक्ति ऐसे रोगों में आपको लेजाकर रोगी को दिखाते और सलाह लेते थे। आपका द्वार सब समय खुला था। रात को १२ बजे या २ बजे जब कभी भी आपको किसी रोगी को दिखाने के लिए कोई बुलाने आता तो आप सब कार्य छोड़ कर अपने शरीर की भी परवाह न करते हुए उसके साथ हो जाते और उसे सान्त्वना और सत् सलाह के द्वारा सन्तुष्ट कर देते थे। इसी प्रकार अन्य कष्टोंके समय भी तन मन धन से आप दूसरोंकी भलाई करने में सदा प्रयत्न किया करते थे। परोपकार के कार्यों में आपने किसी को कभी इन्कार नहीं किया। संक्षेप में परोपकार करते रहना आपका जीवन या सहज धर्म कहा जा सकता है।

कष्ट सहिष्णुता—

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में कई उथल पुथल हुआ करते हैं। किसी के भी सब दिन सरखे नहीं होते। विघ्न बाधाएं पद पद पर उपस्थित रहती हैं अतः उन पर धैर्य्य के साथ विजय प्राप्त करना और अपना समतोलपना न खोना मनुष्य के विवेक का मापदण्ड है।

समय समय पर आपको अनेक कष्टोंका सामना करना पड़ा पर आप सदा अचल रहे, आपने उन्हें समभाव से सहन किया। साधारण कष्टों की ओर' तो आपने ध्यान ही नहीं दिया पर बड़ी बड़ी आपदाओंके समय भी आपने कष्ट सहिष्णुता और सहन–शीलता का अगाध परिचय दिया। साधारण शारीरिक वेदनाओं और रोगों के उपस्थित होने पर आप उन्हें किसी को बतलाते तक नहीं थे। अभयराजजी के स्वर्गवास के पश्चात् आपको खास श्वास का भयानक रोग हो गया था। सारी रात श्वास का उठाव होने पर आप बैठे रहते पर कभी किसी घर वाले के समक्ष भी वेदना प्रकट नहीं होने देते थे। अपने सारे कष्टों को अकेले ही समभाव से सहन कर लेना आपका असाधारण गुण था। कई बार आपको बड़े २ शारीरिक कष्ट सहन करने पड़े पर कभी ओफ् तक न की।

अपने शरीर के लिए इतनी उपेक्षा होते हुए भी दूसरे किसी के रोग उत्पन्न होने पर आप उसकी परिचर्या में रात दिन एक कर देते थे। अर्थात् दूसरों के आराम के लिए वे अपने कष्टों की कोई परवाह न करते थे।

कार्यदक्षता और कर्मठता—

किसी दो चार कार्यों में निपुणता प्राप्त कर लेना तो साधारण बात है पर जीवनोपयोगी प्रत्येक कार्य में निपुण बन जाना, विरले

व्यक्ति ही नजर आते हैं, आप उन अपवादों में से एक थे। छोटे से छोटे और बड़े बड़े किसी भी कार्य को आप बड़ी सफलता से कर सकते थे। आवश्यक होने पर अपनी विविध कलाओंका उपयोग कर दूसरोंको चमत्कृत कर देते थे। रसोई बनाना हो तो उसमें भी आप सिद्धहस्त, गोदोहन और पशुपालन में, मकान की मरम्मत करने में, बढ़ई के काम में, सिलाई के काम में, कृषि कार्य में, तोल जोख में, खाता बही, हिसाब पत्र में, मिठाई आदि बनाने में कहां तक कहा जाय जीवनोपयोगी ऐसा कोई कार्य अवशेष न था जिसे वे सुचारु रूप से सम्पादन न कर सकें। जीवनोपयोगी किसी कार्य को आप छोटा नहीं समझते और साधारण से साधारण काम पशु सेवा तक का कार्य अपने हाथ से उसी रस से कर लेते, किसी भी कार्य के प्रति उनकी घृणा या उपेक्षा नहीं थी।

प्रत्येक कार्य की सफलता सच्ची लगन और अविश्रान्त परिश्रम पर आश्रित है। आप जिस कार्य को हाथ में लेते पूर्ण किये बिना नहीं छोड़ते थे और अपना तनिक भी समय व्यर्थ न गँवा कर सब समय किसी न किसी कार्य में लगाये ही रखते थे। व्यापारिक खातापत्रों को ठीक एवं निरीक्षण करते तो दिन रात उसी में तल्लीन हो जाते। इसी प्रकार अन्य जो कोई भी कार्य करना प्रारंभ करते तो अपनी सारी शक्ति उसी की सफलता में लगा देते। फलतः आप अकेले व्यक्ति जितना अधिक एवं सुन्दरता से कार्य कर सकते आज उसी

काम के लिये हम चार भाई मिलकर भी तद्वत् करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

सादगी और मितव्यय–

सत्ता और सम्पन्नता होते हुए भी जो व्यक्ति निरभिमानी, सदाचारी और सादगी से रह सकता हो वही संसार के लिये एक आदर्श पुरुष कहा जा सकता है। आप सब तरह से समृद्धि सम्पन्न होने पर भी बड़े ही सरल और सादगी के अवतार थे। अभिमान तो आपको छू तक न पाया था और विलासी जीवन तो आपसे कोशों दूर था। कड़ी धूप में ५-१० मील पैदल चले जाना आपके लिये साधारण बात थी। वेश भूषा भी आपकी बहुत ही सीधी सादी थी। आपका भोजन भी बड़ा सात्विक रहा है, किसी भी खाद्य पदार्थ पर आपने रुचि और अरुचि नहीं दिखाई। कोई भी व्यक्ति उन्हें देखकर उनकी श्रीसम्पन्नता का पता नहीं लगा सकता था। अपने जीवन की आवश्यकताओं को उन्होंने बहुत ही सीमित कर रखा था। बिना मतलब के एक पैसा भी खरच न करना और आवश्यक होने पर हजारों की भी परवाह न करना इस स्वर्ण सूत्र को आपने आजन्म पालन किया। पुराने रीति रिवाज एवं मर्यादाओं को वे तथावत् पालन करते थे। हिसाब आप पैसे पैसे का लिखते और विवरण लिखना आपका इतना सुन्दर होता था कि जिसके आधार से

हरेक अनभिज्ञ व्यक्ति भी लाभ उठा सकता है यह कला उनके जीवन की एक विशेष वस्तु थी।

किसी भी बात को हूबहू वर्णन करने में आप बड़े कुशल थे। किसी घटना या यात्रा का वर्णन करने लगते तो उसका चित्रपट सा खींच देते थे।

आपकी स्मरणशक्ति भी असाधारण थी। बाल्यकाल से लेकर अपने सन्मुख घटनेवाली समस्त घटनायें उन्हें भली भाँति स्मरण थी। प्रायः १० वर्ष की अवस्था के बाद की घटनाओं की तो आप संवत् मिति और समय के निर्देश के साथ बतला दिया करते थे। परिवार के किस व्यक्ति की कब मृत्यु हुई, कौन कब जन्मा, कब वे कहाँ गये, इत्यादि बातें पूर्णरूप से स्मरण थीं।

स्वर्गवास—

पुण्यवान जीव के बिना समाधिमरण प्राप्त होना संभव नहीं है। जीवनभर की अखण्ड साधना से आपके पुण्य प्राग्भार की अतिशय वृद्धि हो चुकी थी। आपकी इहलीला-संवरण कथा बड़ी विस्मयकारी है। सं० १९९९ के माघ शुक्ला १४ के दिन आपके चतुर्दशी का चौविहार उपवास था। बाजार से घूमकर प्रतिक्रमण करने के निमित्त संध्या से कुछ पूर्व आप घर पधारे और दीवानखाने में एक तकिये के सहारे बैठे। अगरचन्द ने जो कि उस समय किसी साहित्यिक कार्य में संलग्न था आपके आने से प्रतिक्रमण करने के लिये तैयारी करने

लगा उस समय आपने कहा कि प्रतिक्रमण तो करना ही है पर मेरे हृदय में कुछ वेदना सी हो रही है अतः थोड़ा तेल ले आओ ! मालिश करके फिर प्रतिक्रमण करेंगे ! उनकी आज्ञानुसार तेल मालिश किया गया और उसी समय शुभैराजजी को यह बात मालूम होते ही माघ का महीना था सरदी के कारण छाती में दर्द हो गया होगा समझकर सगड़ी ले आये और सिकताव करने लगे। ये दोनों भाई वस्त्र गरम करके उनके हाथ में दे रहे थे और वे स्वयं अपने हाथ से सेक कर रहे थे। कुछ समय के पश्चात् उन्हें नींद सी आते देख सेक बन्द कर दिया गया। कुछ क्षण में ही आपसे संलग्न बैठे हुए भाई अगरचन्द ने आपके शरीर की एक कम्पन का अनुभव किया और पास ही बैठे हुए शुभैराजजी को इसकी सूचना देते हुए वस्त्र से ढँके हुए मुंह को उघाड़ कर देखा तो वह पुण्यात्मा स्वर्ग प्रयाण कर चुकी थी। सहसा किसीको यह विश्वास नहीं हुआ, मैं भी उनके पास पहुँचा, डा० सूर्यनारायणजी आसोपा भी आये पर वहां कुछ अवशेष न था। त्वरागति से यह बात सर्वत्र फैल गई पर किसी को यह विश्वास नहीं हुआ क्योंकि कुछ समय पूर्व किसी ने उन्हें गवाड़ में तो किसी ने उन्हें बाजार में देखा था। हृदय की गति बंद हो गई और प्रतिक्रमण करने के विचार में उनकी आत्मा हम सबको विरह के परम संताप से उद्वेलित कर स्वर्ग सिधार गई।

जीवन का साफल्य लाभ करनेवाले पितृदेव की पवित्र स्मृति में सादर श्रद्धाञ्जलि समर्पित है।

मेघराज नाहटा

प्रस्तावना

महान् जैन आचार्य श्री जिनदत्तसूरि का जीवनचरित प्रकाशित कर नाहटा-बन्धुओं ने साहित्य एवं धार्मिक संसार को पुनः उपकृत किया है।

आचार्यवर श्री जिनदत्तसूरि ने भारत के परम अनैक्य के युगमें जन्म ग्रहण किया था। उस समय उत्तरी भारत अनेक परस्पर लड़ने वाले राज्यों में विभक्त था। गुजरात के महाराज्य में संवत् ११५० तक कर्ण त्रैलोक्यमल्ल, लगभग संवत् १२०० तक जयसिंह सिद्धराज और उसके बाद परमार्हत श्री कुमारपाल का शासन था। मालवे में नरवर्मा यशोवर्मादि राजा हुए और सूरिवर के जीवन काल में ही सिद्धराज जयसिंह ने उस देश को जीत कर गुजरात महाराज्य में सम्मिलित कर लिया। नाडोल, जालोर आदि के राजा भी तेरहवीं शताब्दी के अन्तिम भागमें गुजरात साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करते थे। अजमेर, नागौर, सांभर आदि में चौहानों का शक्तिशाली राज्य था। आचार्यवर श्री जिनदत्तसूरि का विशेष सम्पर्क इसी वंशके प्रसिद्ध एवं प्रतापी राजा श्री अर्णोराज से हुआ। युक्तप्रान्त में गाहडवालों का प्रबल राज्य उसी समय वर्तमान था। मुसलमान भी उस समय भारतवर्ष में प्रवेश कर चुके थे। पञ्जाब, मुल्तान और सिंध के कुछ भाग मुसलमानों के अधिकार में थे।

धार्मिक क्षेत्रमें प्रायः उतना ही अनैक्य था। राजस्थान में बौद्ध धर्म का विशेष प्रभाव न था, किन्तु पाशुपत, कापालिक, शाक्त, भागवतादि अनेक सम्प्रदाय यहां वर्तमान थे। इनमें कई हिंसावादी एवं रक्तबलि आदिमें विश्वास करते थे। जैनधर्म श्रीजिनवल्लभादि के उपदेश से किसी अंशमें परिपुष्ट एवं स्वच्छ हो चुका था; किन्तु शिथिलाचार अभी सर्वथा नष्ट न हुआ था। कई स्थलों में अभी चैत्य-वास जोरपर था, कई स्थलोंमें सुविहितमार्ग के उपदेशकों की अब तक आवाज ही न पहुँची थी।

यह मन्त्रवाद, तन्त्रवाद और भूतवाद का युग था। कई महा-त्माओं को उत्कृष्ट योग सिद्धियां भी प्राप्त थीं; किन्तु उनका सर्वथा सदुपयोग कुछ कठिन सा हो चला था। तत्सामयिक ग्रंथों को पढ़ने से कम से कम इतना तो निश्चित है कि प्रायः सभी भारतीय भूत, प्रेत, एवं मन्त्र-तन्त्र में विश्वास करते थे।

जातिव्यवस्था इस समय पर्याप्त दृढ़ हो चुकी थी, ब्राह्मणों को ब्राह्मणत्व और अन्य जातियों को अपनी जाति एवं वंश का पूर्ण गर्व था। राजनैतिक और धार्मिक अनैक्य के साथ साथ भारत में यह सामाजिक अनैक्य भी पूर्णतया वर्तमान था।

भारत किसी समय अपने उच्च नैतिक विचारों के लिये जगद्-विख्यात था। श्री भगवान् महावीर एवं भगवान् बुद्ध की विहार भूमि मगध अपने स्वच्छाचार के लिये विशेष प्रसिद्ध थी। ग्रीक

यात्रियों ने लिखा है कि मगध में चोरी और असत्यका अभाव था। गुप्तकालमें भी भारत उन्नति के शिखरपर रहा। किन्तु उसके बाद अनेक विधर्मियों के आक्रमणों के कारण; कुछ स्वाभाविक प्रमत्तता के कारण, एवं कुछ धनाधिक्य के कारण शिथिलाचार ने भारत में प्रवेश ही नहीं किया, अपितु वहां अपना घर बना लिया। अनेक महात्माओं ने इसका समय समय पर विरोध किया। संवत् ११४७ में इस महान् विरोध के कारण नाडोल के चौहान राजा जोजलदेव ने अपनी आज्ञा निकाली और उसे अनेक स्थानों में उत्कीर्ण करवाया। उसमें लिखा है कि एक मन्दिर से सम्बद्ध वेश्याओं को अपने वर्ग सहित दूसरे मन्दिर की यात्रामें भाग लेना पड़ेगा। किसी आचार्य ने या बड़े आदमी ने इसका विरोध किया तो उसे दण्ड दिया जायगा। उसके वंशजों का कर्तव्य होगा कि वे इस आज्ञा का पूर्णतया पालन करवाएं।

खरतरगच्छ के आचार्यों का मैं तो सब से बड़ा कार्य यही समझता हूं कि राजविरोध, जनविरोध, श्रेष्ठि-विरोध की कुछ परवाह न कर उन्होंने अनाचार एवं अनैक्य की जड़ पर कुठाराघात किया। उन्होंने जैनधर्म का मार्ग सब ज्ञातियों के लिये खोला, सबको समानाधिकार देकर ऐक्य सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। मंदिरों में वेश्याओं के नाच को बन्द किया, रात्रि के समय मंदिरों में स्त्री-प्रवेश का निषेध किया, और चैत्यादि का त्याग कर जिन शासन का पूर्णतया

पालन किया और ब्राह्मण क्षत्रियादि को भी अहिंसा का उपदेश दिया।

संवत् १२११ में आचार्य श्रीजिनदत्तसूरि का देहान्त हुआ, संवत् १२४८ में भारत का बहुत बड़ा भाग अपनी स्वाधीनता खो बैठा। यदि आचार्य श्री जिनदत्तसूरि, उनके गुरुवर, एवं श्रीजिनपतिसूरि आदि जैन संघ को सुदृढ़, सुविहित एवं सुव्यवस्थित न कर देते तो बहुत सम्भव है कि जैन धर्म यवनों के प्रवल राजनैतिक एवं धार्मिक आक्रमण का भोग बन जाता और सामना न कर पाता। प्रारम्भिक मुसलमान कालमें जैन धर्म का पतन तो हुआ ही नहीं अपितु उसने सर्वतोमुखी वृद्धि भी की, यह सब श्री जिनदत्तसूरि आदि महात्माओं के उपदेश का फल था। वे जैन संघ की नींव का दृढ़ कर चुके थे, उसको चलायमान करना अब यवन झंझावात की शक्ति के बाहर का विषय था। भगवान् करें कि ऐसी अनेक विभूतियां उत्पन्न हो कर भारत का फिर कल्याण करें।

श्री अर्बुदतीर्थ,
पौष कृष्णा सप्तमी,
वि० सं० २००१.

दशरथ शर्मा

भूमिका

भारतवर्ष की संस्कृति चिन्तनात्मक विचारधारा पर निर्भर है। इसका उदय भी उन प्राकृतिक सौन्दर्य्यसम्पन्न गिरि-कन्दराओं में निवास करनेवाले परम तपस्वी ऋषि मुनियोंके सतत् आध्यात्मिक मनन में हुआ है। अतः भारतीय संस्कृति शुद्ध और आत्म-कल्याणकारिणी है। यों तो संस्कृति मात्र का परम ध्येय मानव का उत्कृष्टतम विकाश होना चाहिए पर भारतीय संस्कृति का तो अत्यन्त व्याप्त ध्येय है। मानव जाति के आध्यात्मिक विकाश द्वारा मोक्षप्राप्ति। क्योंकि विश्व के समस्त प्राणी अक्षय सुख प्राप्ति के लिए ही भिन्न-भिन्न प्रकार के सभी शक्य प्रयत्न बड़ी तत्परता के साथ करते हैं। कहना न होगा कि इस प्रकार का सुख आत्मा के शुद्धतम स्वरूप को पहिचाने बिना कदापि संभव नहीं। इसलिए आध्यात्मिक विकाश आवश्यक ही नहीं पर अनिवार्य्य है। जब भारतीय संस्कृति की जड़ में ही मानव मात्र के लिए कल्याणकारक भावनाओं के निगूढ़तम तत्त्व अंतर्निहित हैं। ऐसी संस्कृति का विकाश न केवल भारत में ही पर अभारतीय देशों में भी प्रचार के विभिन्न प्रकार के प्रतीक—शिलालेख साहित्य एवं पुरातत्त्वा-

वशेष आज भी उपलब्ध है। जो वर्त्तमान मानव समाज को पूर्व प्रचलित सांस्कृतिक तत्त्व के सूचक हैं।

जैनों ने भारतीय संस्कृति के प्रचार-विकाश और पुष्टि करने वाले विभिन्न प्रकार के उच्च श्रेणी के आलोचनात्मक साहित्यिक ग्रन्थ निर्माण कर इस धाराके प्रवाहगत वेग को अग्रिम उन्नति के लिए नवीनतम विचारोत्तेजक तत्त्वों से आप्लावित किया। इन महान् कार्यों को करने में अधिकतर सहयोग त्याग प्रधान जैन संस्कृति के प्रतीक मुनियों का एवं कतिपय उत्कृष्ट गृहस्थों का योग रहा है।

जैन संस्कृति-श्रमण संस्कृति में विभिन्नता नहीं है, इन दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। श्रमण संस्कृति के गौरव को बढ़ाने वाले अनेक ज्योतिर्धर जैनाचार्य पूर्वकाल में हो चुके हैं, जिन्होंने न केवल जैन संस्कृति को ही उन्नत किया पर साथ ही साथ भारतीय संस्कृति में जो विकृतिएं आ गई थीं उनको दूर करने के लिए भागीरथ प्रयत्न कर शुद्धतम आध्यात्मिक साधनाओं का संरक्षण एवं विकाश किये। उन आचार्यों में आचार्य श्रीहरिभद्रसुरिजी, श्रीजिनेश्वरसूरिजी, श्रीजिनवल्लभसूरिजी एवं श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज तथा इनके पट्टधर मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरिजी एवं श्रीजिनपतिसूरिजी आदि सुविहित परमत्यागी आचार्य मुख्य हैं। इन सभी का यदि आलोचनात्मक इतिहास तैयार किया जाय तो संसार को विदित हो जायगा कि इन आचार्यों ने श्रमण-संस्कृति को रक्षा के

लिए क्रान्तिपूर्ण प्रयत्न किये थे, एवं कौन-कौन सी आततायियों एवं कठिनाइयों का सामना–यहां तक कि लठैतों के द्वारा प्रताड़ित करने का समय भी आ गया था—कर श्रमण संस्कृति को नष्ट होते होते या तो विकृति की व्याप्ति को हटाने के लिए अनेक प्रकार के सुविहित मार्ग प्रकाशक विधि-अविधि विषय प्रतिपादक संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा में साहित्य निर्माण कर, एवं प्रभु महावीर के शासन के अंग रूप श्रमणों पर जो महान् उपकार किये हैं, उनको हम किसी भी अवस्था में नहीं भुला सकते।

समाज और राष्ट्र के सांस्कृतिक स्तर को उच्चस्थान प्रदान करने में महापुरुषों ने महान् आदरणीय प्रयास किये है। इनके जीवन का शायद ही कोई क्षण ऐसा हो जो मानव कल्याण के लिए उपयुक्त – आवश्यक न हो। क्योंकि जनता के हृदय पर इन त्यागी ऋृषि मुनियों का पूर्ण अधिकार रहता है, अतः समाज को जिस सांचे में ढालना चाहें ये आदरणीय महानुभाव ही ढाल सकते हैं। प्राचीन इतिवृत्त में एतद्विषय प्रतिपादक विविध उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं। प्रश्न होता है कि महापुरुषों का जीवन जिस शताब्दी में यापन हुआ था उस शताब्दी के आचार विचार आज से भिन्न थे तो आज उनके जीवन से हम कौन सी वस्तु ग्रहण कर आत्मिक उन्नति कर सकते हैं? प्रत्युत्तर में केवल हम इतना ही कहना चाहते हैं कि इन महान्

आत्माओं के क्रियाकलाप रहन-सहन और इनके द्वारा विरचित साहित्यिक ग्रंथ मानव मस्तिष्क को आध्यात्मिक तत्त्वों से परिपुष्ट कर अग्रिम उन्नति के लिये प्रेरित ही नहीं करते पर मानव संस्कृति विकासित उच्चतम सिद्धान्तों का परिचायन भी कराते हैं। साथ ही साथ इनका सम्बन्ध उन शताब्दियों से रहते हुए भी उन महात्माओं की जीवनियें आज की अपेक्षा से प्राचीन होते हुए भी नवीनतम भावनाओं की पोषक एवं परिवर्द्धिका हैं। अतीत के बिना वर्त्तमान काल का प्रकाश असंभव नहीं पर कठिन अवश्य है। क्योंकि जो देश अपनी आत्मिक विभूतियों को भुला देता है उसका वास्तविक उत्थान संदिग्ध है। उस विषयकी पूर्त्ति के लिए आंशिक—रूपेण श्रीयुत् अगरचंद् भंवरलाल नाहटा ने कुछ प्रयास अवश्य किया है। प्रस्तुतः ग्रंथ उसी प्रयत्न का अंग है।

प्रस्तुतः ग्रन्थ के अध्ययन से विदित होता है कि आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज ने अनेक चैत्यवासी आचार्यों को प्रतिबोध देकर सच्चे अर्थों में जैन मुनि दीक्षाएं दीं, क्योंकि उस समय में चैत्यवासियों का सार्वभौमिक वर्चस्व था अतः जिस विषय पर हमें लेखनी चलाना है उस विषय से सम्बन्धित सभी परिस्थितियों का वास्तविक चित्रण आवश्यक ही नहीं पर ऐतिहासिक ग्रन्थों के लिए तो अत्यन्त अनिवार्य है।

चैत्यवास—

यद्यपि जैन संस्कृति में त्याग का स्थान अत्यन्त उच्च व पवित्र माना गया है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसे विकट समय में आत्मोपदेश देना प्रारंभ किया था जब भारत हिंसापूर्ण वातावरण में तल्लीन था। तत्काल में धर्म के नाम पर न जाने क्या क्या अत्याचारों का पोषण उन लोगों द्वारा होता था, जो धर्म के ठेकेदार और अनेक विषयों के पारंगत विद्वान् वे अपने को मान बैठे थे। मोक्ष-प्राप्ति का उपाय उनकी दृष्टि में केवल यज्ञ ही था जिसमें लाखों मूक प्राणियों को मौत के घाट उतारा जाता था अर्थात् बलि के रूप में यज्ञों में झोंक दिये जाते थे। हमारा मतलब तत्कालीन ब्राह्मण समाज से है जो अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को भूल कर केवल भौतिक-वाद को ही सर्वस्व समझ रहे थे। उपनिषद् उस समय केवल शुकपाठवत् रटे जाते थे। तापत्रय निवृत्तिवादका कोई अस्तित्व नहीं था। इसे एक अपेक्षा से वास्तविक ज्ञान प्राप्ति में बाधक एवं मिथ्यान्धकार युग कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। प्रसंगवश हमें स्पष्ट रूप से कहना चाहिये कि इतःपूर्वकालीन साहित्य ऋग्वेद के नवों मण्डलों में भौतिकवाद का आधिक्य विस्तृत रूपेण वर्णित हैं। आध्यात्मवाद या आत्म-तत्त्व प्राप्तिका स्पष्टोल्लेख हमारे अवलोकन में नहीं आया। आध्यात्मवादियों की विचारधारा ही इतनी विशुद्ध और उच्चकोटि के चिन्तन से परिपूर्ण रहती है जिसमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" या सर्वजीव

समानता के सिद्धान्तों का स्पष्ट स्फोटन होता है परन्तु नव-मण्डला न्तर्गत ऋषि-मुनियों की प्रार्थनाओं कोसुनकर केवल तेरा मेरा या ममत्व या अहंभाव सूचक विचारधारा का अस्खलित प्रवाह प्रवाहित हुआ हैं। संभव है भगवान् महावीर के समय में उस प्रवाह का ही ब्राह्मण समाज में पर्याप्त प्रचार रहा हों आश्चर्य नहीं कि इस विचारधारा को लेकर ही भौतिकवाद के परि-पोषणार्थ उपरोक्त कार्य हों। उन ब्राह्मणों की हिंसात्मक चित्त वृत्ति को अहिंसा में परिवर्त्तित कर दी। लोकमान्य तिलक के शब्दों में कहा जाय तो वर्त्तमान ब्राह्मण समाज पर जो अहिंसा की छाप है वह जैनधर्म की अहिंसा के कारण ही। प्रभु महावीर ने कतिपय ब्राह्मणों को मुनिधर्म की दीक्षाएं देकर याग प्रधान संस्कृति में प्रविष्ट कराया।

भगवान् महावीर के समय में जैन मुनियों का आचार विचार संसार के लिये एक महान् आदर्श था जो सत्य और अहिंसा पर निर्भर था। परन्तु संसार परिवर्त्तनशील है। सच कहा जाय तो परिवर्त्तनशीलता ही विश्व का चिरस्थायी सिद्धान्त है। आज विश्व में कोई भी ऐसा धर्म दृष्टिगोचर नहीं जो जिस समय जिन आदर्शों को लेकर अवतरित हुआ हो आज तक वे आदर्श उस धर्म में यथास्थित रूपेण विद्यमान हों अर्थात् उन आदर्शों में विकृति न आई हो। पर कहना पड़ रहा है कि संसार में शायद ही कोई धर्म ऐसा होगा जिस में समय पाकर प्रकृति से, सामाजिक विचारों से या ऐसे ही

कोई अन्य कारणों से विभिन्न संप्रदायों की सृष्टि न हुई हो। जैनधर्म भी इस नियम का अपवाद कैसे हो सकता था।

धर्म से जो संप्रदाय अलग निर्मित होता है वह पुरातन आदर्श अनुधावन करनेवाला होने पर भी कुछ न कुछ नूतनत्व अवश्य ही रखता है। इस नूतनत्व को ही उस संप्रदाय के विद्वान साहित्यिक रूप देकर आदर्श रूप से अंगीकार करवा कर वर्षों के बाद शुद्धतम धर्म के रूप में संप्रदाय परिवर्तित हो जाते हैं। इस समय लाभ हानि का विचार बहुत कम रहता है। चैत्यवास भी इसी विचार प्रसूत कल्पनाओं का तादृश रूप है।

चैत्यवास की प्रारंभिक अवस्था को सुचित करने वाले अकाट्य प्रमाण अन्धकार में है। कलहप्रिय धर्मसागर जी ने "वीरात् ८८२ चैत्यस्थितिः" उल्लेख किया है। आचार्य श्री जिनवल्लभसूरिजी कृत संघपट्टककी भूमिका में वीर निर्वाण ८५० का उल्लेख है पर ये उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि की गवेषणा के बाद खास मूल्य नहीं रखते। क्योंकि इन उल्लेखों के पूर्व ही चैत्यवास की प्रसिद्धि सार्वत्रिक हो चुकी थी। वज्रस्वामी के समय में चैत्यवास का आभास मिलता है, विक्रम की प्रथम शताब्दी में आचार्य पादलिप्रसूरिजी के समय में चैत्यवास का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् छट्ठीशताब्दी तक इस की क्या स्थिति रही जानने के साधन नहीं। आचार्य श्रीहरिभद्र-

सूरि जी के समय में चैत्यवासियों का सूर्य्यमध्यान्ह में था जैसा कि आप के सम्बोधप्रकरणमें इन लोगोंपर किये गये भयंकर शाब्दिक प्रहारों से सूचित होता है :—

''ये कुसाधु चैत्यों और मठों में रहते हैं, पूजा करने का आरम्भ करते हैं, देव द्रव्यका उपभोग करते हैं, जिन मन्दिर और शालायें चिनवाते हैं, रङ्ग-विरंगे सुगन्धित धूपवासित वस्त्र पहिनते हैं, विना नाथ के बैलों के सदृस स्त्रियों के आगे गाते हैं, आर्यिकाओं द्वारा लाये गये पदार्थ खाते हैं और तरह तरह के उपकरण रखते हैं। जल, फल, फूल, आदि सचित द्रव्यों का उपभोग करते हैं, दो तीन बार भोजन करते और ताम्बूल लवंगादि भी खाते हैं।

''ये मुहूर्त निकालते हैं, निमित्त बतलाते हैं, भभूत भी देते हैं। ज्योनारों में मिष्ठ आहार प्राप्त करते हैं, आहार के लिये खुशामद करते और पूछने पर भी सत्य धर्म नहीं बतलाते।

''स्वयं भ्रष्ट होते हुये भी दूसरों से आलोचना प्रतिक्रमण कराते हैं। स्नान करते, तेल लगाते शृंगार करते और इत्र फुलेल का उपभोग करते हैं।

''अपने हीनाचारी मृतक गुरुओं की दाह-भूमिपर स्तूप बनवाते हैं। स्त्रियों के समक्ष व्याख्यान देते हैं और स्त्रियाँ उनके गुणों के गीत गाती हैं।

सारी रात सोती, क्रय-विक्रय करते और प्रवचन के बहाने विक-थायें किया करते हैं।"

"चेला बनाने के लिये छोटे-छोटे बच्चों को खरीदते भोले लोगोंको ठगते, और जिन प्रतिमाओं को भी बेचते—खरीदते हैं।

"उच्चाटन करते और वैद्यक यंत्र मंत्र गंडा, तावीज़ आदि में कुशल होते हैं।

"ये सुविहित साधुओं के पास जाते हुये श्रावकों को रोकते हैं, शाप देना का भय दिखाते हैं, परस्पर विरोध रखते हैं और चेलों के लिये एक दूसरे से लड़ मरते हैं।"

"जो लोग इन भ्रष्टचरित्रों को भी मुनि मानते थे, उनको लक्ष्य करके श्री हरिभद्रसूरि कहते हैं, "कुछ नासमझ लोग कहते हैं कि यह भी तीर्थंकरोंका वेष है, इसे नमस्कार करना चाहिये। अहो धिक्कार हो इन्हें। मैं अपने सिर के शूल की पुकार किसके आगे जाकर करूँ१ ?"

सन् १९०७ में प्रकाशित आचार्य श्री जिनवल्लभसूरि कृत संघपट्टक सानुवाद टीका की प्रस्तावना में (पृ १२) इस प्रकार उल्लेख मिलता है।

"परन्तु कालनो महिमा विचित्र छे एटले के जे अचार्योएकमर कसी चैत्यवास तोड्यो तेमनाज वंशजो फरी ने शिथिलाचार मां

१ बाला वयंति एवं वेसो तित्थंकराण एसो वि।
'नमणिज्जो धिद्धो अहो, सिरसूल' कस्स पुक्करिमो ॥७६॥
सम्बोध प्रकरण १५

हमणां पाछा फसी पडया छे, तेओ हाल पोता ने गोरजीना नामे ओोलखावे छे अने जो के तेओ चैत्यमां निवास करता नथी तो पण चैत्यना पडखे बांधेला अपासरा* रूप मठमां रहीने हाल मठ वासी बनेला छे तेओ मां जे समजुओ छे ते पोताना शिथिलाचार ने पोतानो प्रमाद जणावी सत्यमार्ग ने दूषित नथी करतां, पण अणसमजुवर्ग एम समजे छे के आ मठवास तो अमारी असल परम्परा थी ज चाल्योआवे छे।तो तेवा जनोने सत्य वात जणाववा खातर आ (आचार्य श्री जिनवल्लभ सूरि कृत) संघ पट्टक तथा तेनी टीकानु भाषांतर छपावी प्रसिद्ध करवामां आवे छे ।"

सम्बोधप्रकरण नामक ग्रन्थ में इस विषय पर अधिक से अधिक प्रकाश डाला गया है । बारहवीं शताब्दी से लगाकर १७ के कुछ ग्रन्थों में और वृतियों में भी इस प्रकार के भ्रष्टाचारों का बर्णन हृदय को प्रकंपित कर देता है— अधिक स्पष्ट कहा जाय तो जैन संस्कृति की गौरव गरिमां में धब्बा है। उपर्युक्त परंपरा का प्रवाह वर्तमान तक पहुँचा है । अपेक्षा कृत पूर्वापेक्षा विकशित भीहो सकता है, यहां हमारा मौन रहना ही अधिक उचित होगा। धन्य हैं उन सुविहित मुनियुगलों को जिन्होंने आत्म कल्याण के साथ-साथ लोक कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया।

---

* आज भी सूरत, जैसलमेर, बालोत्तरा, आदि नगरों के गद्दीघरों के उपाश्रयों में जिनमन्दिर विद्यमान हैं। इसी उद्देश्यको लक्ष्य कर प्रस्ताव के लेखक ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

इतः पूर्व आनन्दविमलसूरि, गणिवर सत्यविजय पन्यास, उपाध्याय क्षमाकल्याणजी, सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक श्रीमद् देवचन्द्रजी, श्री शिवजीरामजी, श्रीयुक्त मोहनलालजी, पार्श्वचन्द्रगच्छीय श्री भातृचन्द्रजी, Jain Encycopaepia, जैसे अत्यन्त महत्व पूर्ण ग्रन्थ के रचयिता श्री राजेन्द्र सूरि और इन पंक्तियों के लेखक के दादा गुरु प्रातः स्मरणीय श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज जैसे दिग्गज विद्वानों ने अपनी प्रमाद जन्य प्रवृति के रहस्यको पहचान कर शिथिलाचार का सर्वथा त्याग कर वास्तविक कल्याणकर मुनि धर्म अंगीकार कर अवशिष्ट सज्जनों के लिये एक नवीन आत्मकल्याणकर आदर्श उपस्थित किया है। इन पूज्य पूरुषों के चरण कमलों में हमारे कोटिशः वन्दन हों।

गुजरात की प्रसिद्ध राजधानी अनहिलपुर पाटण के बसाने वाले चापोत्कट वनराज (वि० सं० ८०२) के गुरू शीलगुणसूरि चैत्यवासी थे। अतः वनराज ने आज्ञा निकाल रक्खी थी कि मेरे राज्य में चैत्यवासी मुनियों को छोड़कर अन्य सुविहित मुनि ठहर नही सकते*। इस प्रकार पश्चिम भारवर्ष में चैत्यवास का बोल बाला था।

---

* चैत्यगच्छ यतिव्रात, सम्मतो वसतान् मुनिः।
नगरे मुनिभिर्नात्र, वस्तव्यं तदसम्मतैः ॥१८६॥

[प्रभावक चरित्र, सिंघीसिरीज पृ० १६३]

अचार्य परम्परा—

उपर्यक्त विवेचन से कोई सज्जन यह न समझ बैठे कि ग्यारहवीं शताब्दीके पूर्व सुविहित मुनियों का अस्तित्व ही न था। उस समय सुविहित शिरोमणि परमत्यागी श्रीवर्द्धमान-सूरिजी एवं उसके सुयोग्य शिष्ययुगल जिनेश्वरसूरिजी तथा बुद्धिसागरसूरिजी न केवल उत्कृष्ट क्रियापात्र हो थे, बल्कि उच्च श्रेणिके सफल साहित्यकार भी थे, जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ प्र० २ में दी हुई इनकी साहित्यिक रचनाओं से जाना जाता है। ११ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चौलुक्य नरेश दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासियों के साथ शास्त्रार्थ कर न केवल विजय-लक्ष्मी ही प्राप्त हुई पर महाराज दुर्लभ द्वारा खरतर* विरूद प्राप्त किया। इस सफल शास्त्रार्थ का वर्णन गणधरसार्धशतक बृहद्वृति में निहित है। तत्पश्चात् श्री जिनचद्रसूरि एवं नवाङ्ग वृत्ति निर्मापक अनन्तोपकारी जैनागमसंरक्षक श्री अभय-देवसूरिजी महाराज हुए, जिन्होने अपना सम्पूर्ण जीवन केवल

---

* आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरिश्वरजी ने अपने ग्रन्थों में "तुम्हह इहु पहु चाहिलि दसिउ हियइं बहुत्तु खरउ विमंसिउ" इस प्रकार खरतर गच्छ सूचक उल्लेख किया है जिस पर 'अपभ्रंशकाव्यत्रयी' में पं० लालचंद भगवानदास गांधी लिखते हैं "उपर्युक्तायमेव गाथायाँ" बहुत्तु खरउ पदं प्रयुज्य ग्रन्थकर्त्रों निजाभिमतस्य विधिपथस्य "खरतर" इति गच्छसंज्ञा ध्वनिता वितर्क्यते। विधिपथस्यैव तस्य कालक्रमेण प्रचलिता "खरतर गच्छ" "इत्यभिधाऽद्यवधि विद्यते" (भूमिका पृ० ११६)।

तीर्थंकर भगवान प्रणीत आगमों पर वृत्ति निर्माण करने में ही लगा दिया। यदि यह कार्य न हुआ होता तो आज इन आगमों के मूलगत रहस्य को समझने वालों की संख्या संभवतः उंगली पर गिनने लायक भी न रहती। इनके पट्टपर आचार्य श्रीजिनवल्लभसूरिजी महाराज हुए। यद्यपि आपके जन्मादि काल सूचक ऐतिहासिक संवत् अनुपलब्ध है परन्तु आपके धार्मिक एवं साहित्यिक कार्य बहुत उच्चकोटि के थे जिनका वर्णन लेखिनी की शक्ति से बाहर का विषय है। आपकी वक्तृत्व कला में जो महान् गति थी वह तत्कालिक जैन ज्योतिर्धरों में शायद ही पायी गई हो। आपने अपनी क्रान्तिपूर्ण विचारधारा का अक्षुण्ण प्रवाह बहा कर चैत्यवासियों के विरुद्ध विशद आन्दोलन चलाया था। एतद्विषयक संघपट्टकादि ग्रन्थों का भी निर्माण कर निवृत्तिमय-त्यागपूर्ण जैन-श्रमण संस्कृति को सुरक्षित रखा। इन कार्यों में आपने ऐसी सहिष्णुता का परिचय दिया जो एक आदर्श युग प्रवर्त्तक महापुरुष को शोभा देता हो।

मानव संस्कृति का उत्थान पतन अवलम्बित है उस देशके विचारशील, क्रान्तदर्शी, प्रतिभासम्पन्न कवियों पर। कविता में ही ऐसी अद्भुत शक्तियाँ अन्तर्निहित हैं जो मृतप्राय मानवमें भी जीवन डाल सकती है, क्योंकि कविताका सीधा सम्बन्ध है मानव हृदयके साथ। कवित्व ही की शक्तिके बलपर न होनेयोग्य कार्य भी हुए हैं जिनकी विवेचना यहाँपर अभीष्ट

नहीं। आचार्य श्री जिनवल्लभसूरिजी महाराजके समयके साहित्याकाशको सूक्ष्मतम दृष्टिसे अवलोकन करनेसे विदित होता है कि मानव-हृदयमें सुधाका संचार करनेवाली हृदयद्राविणी कविताओंका विशेष महत्व था। जिनवल्लभसूरिजी महाराजने कविता निर्माण-कलामें जो सफलता प्राप्त की थी वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण होनेके साथ मनोरंजक भी है। आपकी कविताओंमें शब्दचयनशक्ति, सौकर्य्य, माधुर्य्य, विषय प्रतिपादन शैली, शाब्दिक अलङ्कार, विविध भाषा एवं छत्र, चमर, दण्ड, कमल आदि चित्रालङ्कार गुंफन-प्रतिभा अलौकिक थी। संसारमें कवि बनाये नहीं जाते पर स्वाभाविक रूपेण उत्पन्न होते हैं। आप पर यह उक्ति सोलहों आना चरितार्थ होती है कवित्वको पूर्व जीवन गत संस्कारकी देन कहें तो अनुचित न होगा। आपकी कविताओंमें एक और महत्वपूर्ण विशेषताका अनुभव होता है जो अन्यत्र शायद ही उपलब्ध हो। वह यह कि प्राकृत भाषा द्वारा संस्कृतके प्रसिद्ध छन्दोंमें शब्द रचना एवं अस्खलित प्रवाह। प्राकृत भाषापर तो आपका पूर्णाधिकार था ही, पर संस्कृत भाषामें भी आपने जो विद्वत्ता एवं कलापूर्ण साहित्य निर्माण किया है वह आज भी एतद् भाषाविदोंको आश्चर्यान्वित किये बिना नहीं रहता। तत्कालिक प्राकृत भाषाका वैज्ञानिक अध्ययन तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक आपके सम्पूर्ण साहित्य का समुचित परिशीलन न किया जाय। मालव नरेश नरवर्मा को आपने अपने कवित्व-समस्यापूर्त्तिके बलसे प्रभावित कर चित्तौड़ के विधि चैत्यालयके लिए आर्थिक साहाय्य प्रदान करवाया था।

आपके समयमें जैनसमाजका मानसिक चिन्तन बहुत उच्च श्रेणि का था। अतः तत्कालिक जैन साहित्यमें चिन्तनशीलताका व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैन गृहस्थ भी उस समय संस्कृत, प्राकृत एवं तत्कालीन लोक भाषाओंमें आत्मलक्षी जैन संस्कृति के उत्तमतत्वोंका प्रवाह बहाते थे। श्रीजिनवल्लभसूरिजी का अनुयायी गृहस्थ समुदाय भी ग्रन्थकार था। नागौरके श्रेष्ठि पद्मानन्दने वैराग्य-शतक नामक ग्रन्थ की रचना की। तत्कालिक जैन धर्मके ज्योतिर्धर भी अपने विषयके पूर्ण निष्णात थे। सामाजिक विकाश भीपर्याप्त उन्नत था जैसा कि तत्कालीन कुछ सांस्कृतिक ग्रन्थोंसे विदित होता है। यदि इन ग्रन्थोंका वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो निस्संदेह भारतीय संस्कृतिके गौरव को बढ़ानेवाले विविध नूतन सामाजिक तत्व प्रकाशमें आ सकते हैं*। इन तत्वोंसे मालूम होगा कि उस

* भारतवर्ष के सामाजिक और संस्कृतिक इतिहास की बहुत सी मौलिक सामग्री जैन आगमों एवं तद् परवर्ती साहित्य के अनेकां ग्रन्थों में पाई जाती है यहां तक कि कई ग्रन्थ तो स्वतंत्र उपर्युक्त विषयों का ही विशद विवेचन उपस्थित करते हैं। विक्रम पूर्व से लगाकर आजतक भारतवर्ष की भिन्न-भिन्न समय पर उत्पन्न होने वाली सामाजिक समस्याओं का जिन्हें आलोचनात्म अध्ययन करना हो उन विद्वान् गवेषियों को चाहिये कि वे प्रत्येक शताब्दी के विभिन्न प्रान्तीय एवं भाषीय जैन ग्रन्थों का अवश्य ही तलस्पर्शी अध्ययन—मनन करें।

हमें इस बात का सदैव परिताप रहा है कि जैनों की इतनी विशाल साहित्यिक सम्पत्ती होते हुए भी एक दृष्टि से वे इससे वञ्चित से रह जाते हैं। इस युग में भी यदि साहित्यिक और ऐतिहासिक गवेषणा करने-कराने में जैनी पश्चात पाद रहे तो फिर उत्थान की कामना असफल प्रयास होगा।

समय कौन से सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्थाके नियम ऐसे थे जिनके प्रचारका क्षेत्र न केवल गुजरात ही पर सम्पूर्ण भारतवर्ष था। तत्कालीन साहित्यसे यह भी जाना जा सकता है कि अरबके रिवाज राजनैतिक स्थितिमें आंशिक रूपेण विद्यमान थे। उदाहरण के लिए "तबलेकी बला बन्दरके सर" कहना न होगा कि उस समय राजकीय अश्वशालामें बन्दर इसी लिए बांधे जाते थे कि अश्वोंपर दृष्टिदोष न लगने पावे। इसमें वैज्ञानिक तत्व कितना है हम नहीं कह सकते, क्योंकि वह युग श्रद्धावादका और मांत्रिक चमत्कारों में विश्वास करनेवालों का था। आज भी मध्यप्रान्तमें छत्तीसगढ़ डिविजन एवं उड़ीसाके कुछ विभागोंमें हमने प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि वहांके सामाजिक कार्य संचालनमें और कुटुम्ब परिचालनमें भी मंत्रवादका सहारा अधिक लिया जाता है। वैद्योंकी और डाक्टरों की आवश्यकताका अनुभव उपर्युक्त प्रान्तीय कुछ विभागोंमें नहीं।

तत्कालीन राजनैतिक स्थिति—

जिस समय युगप्रवर यानी चरित्रनायक भारतवर्षमें अवतीर्ण हुए थे उस समयका राजनैतिक वातावरण जानना आवश्यक है। श्रीजिनदत्तसूरिजीने ईस्वी सन् १०७५ से ११५४ (वि० सं० ११३२ से १२११) तकके मध्य भागको सार्थक किया था। इसी समयके बीचमें काश्मीरमें ईस्वी सन् १०६३ से ११५० तक कलश, हर्ष और जयसिंह नामक तीन राजा हुए। जयसिंहके राजत्वकालमें इनकी राजसभाके मान्य पण्डित राजानक रुय्यक ने "अलङ्कार सर्वस्व" नामक उपादेय ग्रन्थ निर्माण किया। कन्नौजमें राठौर वंशीय

राजाओंका प्रभुत्व था। चरित्रनायकके समकालीन गोविन्द्रचन्द ई० सन् ११०४ से ११५५ तक पाश्चालकेराजाथे। नैषधकाव्यतथा खण्डन खण्ड खाद्य जैसे उत्कृष्ट वेदान्त ग्रन्थकेप्रणेता श्रीहर्ष इन्हींके सभापति माने जाते थे। जयचन्द्र-संयोगिताके पिता इनके पौत्र थे, पृथ्वीराज चौहानके साथ इस जयचन्द्रके वैमनस्यके कारण भारतवर्षको विदेशी राजत्वका कटु अनुभव आजतक करना पड़ रहा है नहीं कहा जा सकता भविष्यमें भी कब करते रहना पड़े। यदि यहांके गोरे शासक अपने वादेके अनुसार चले जांय तो तब तो कोई बात नहीं। बुन्देल त्रिखण्डमें चन्देल राजा कीर्त्तिवर्माने सन् १०४६ से ११०० तक राज्य किया। इस समय तत्समोपवर्त्ती त्रिपुरीमें कलचुरि नरेश कर्णका साम्राज्य था। इनके अन्तिम समयमें श्रीजिनदत्त सूरि २५ वर्षके रहे होंगे। इन्हींके समय श्रीकृष्ण मिश्रने प्रबोधचन्द्रोदय नाटक लिखा और सन् १०६५ में कीर्त्तिवर्माके राजदरबारमें उसका अभिनय हुआ। बङ्गाल और विहारमें पालवंशीय राजा रामपाल बड़े प्रतापी थे। सन् १०८४ से ११३० तक उन्होंने राज्य किया। सन् १०८४ में ही सोमचन्द्रको दीक्षा दी गयी थी। राजा रामपालकी मृत्युके समय श्रीजिनदत्तसूरिजी ५५ वर्षके रहे होंगे। इस कालमें मगध प्रान्तमें बौद्धोंका प्राधान्य था।

पाल वंशीय राजाओंकी सीमाके भीतर ही एक भाग पर अधिकार करके सामन्तदेवके पौत्र तथा हेमन्तसेनके पुत्र विजयसेनने सैन वंशका साम्राज्य स्थापित किया। सामन्तदेव दक्षिणसे

आये हुए थे तथा मयूरभंज रियासतके कसियारमें पिता-पुत्रने एक छोटा-सा राज्य स्थापित किया था। सन् ११०८ के पूर्व ४२ वर्षतक विजयसेनने राज्य किया। इस समय श्रीजिनदत्तसूरिजी ३३ वर्षके रहे होंगे। सन् ११०८ के आस-पास विजयसेनके पुत्र बल्लालसेन ने शासनकी बाग्डोर अपने हाथमें ली। नवद्वीप (नदिया) के विद्यापीठका शिलान्यास इन्होंने ही किया था। शैल वंशीय राजा ब्राह्मण थे। अतः इन्होंने वर्णाश्रम धर्मकी सुदृढ़ स्थापना बङ्गालमें की। सन् १११६ में इनके पुत्र लक्ष्मणसेन गद्दीपर आये और इन्होंने ८० वर्षतक राज्य किया। इनके राजत्वकालमें प्रथम ३५ वर्षोंमें चरित्रनायक राजपूतानामें धर्म प्रचार कर रहे थे। गीत-गोविन्दकार[1] महाकवि जयदेव इनकी सभाके पंचरत्नोंमें थे। लक्ष्मण

---

१ कृष्णभक्ति रसात्मक संस्कृत भाषाके गीतिकाव्योंमें गीतगोविन्दका स्थान अत्यन्त उच्च श्रेणिका माना जाता है। बादमें इसीके भाव हिन्दी, गुजराती, बंगला, मराठी एवं तामिल भाषाओंमें प्रवाहित हुए। परन्तु संस्कृत भाषा में एतद्विषयक विस्तृत ग्रन्थका उल्लेख अद्यावधि हमारे अवलोकनमें नहीं आया। यद्यपि जैनों ने वैराग्यरस पोषक और अध्यात्मवाद समर्थक कुछ ग्रन्थ संस्कृत भाषामें अवश्य ही निर्माण किये है। जिन्हें पढ़ने से अपूर्व आत्मिक आनन्दका अनुभव होता है और साथ ही साथ मन भी आत्मकर्तव्य परके प्रशस्त मार्गकी ओर अग्रसर होनेकी भावनासे से वैसी प्रवृति को प्रोत्साहित करता है। छत्तीसगढ़ प्रान्त में रत्नपुर के बाबू रेवारामजी श्रीवास्तवने विक्रम संवत् १९११ में गीतमाधव महाकाव्य नामक कृष्णभक्ति विषयक गिर्वाण

सेनका दरबार भागीरथीके तटपर नवद्वीपमें लगता था। भारतीय न्याय शास्त्रके पारङ्गत विद्वानोंमें रघुनाथ शिरोमणि ऊँचा स्थान रखते थे, वे और गौरांग महाप्रभु यहींके विद्वान और धर्म प्रचारक थे।

श्रीजिनदत्तसूरिजीके समयमें दक्षिण भारतमें कल्याणी चालुक्य वंशका राज्य था। निजाम राज्यके गुलबर्गाके पास कल्याण नामक शहर इसी वंशकी राजधानी थी। आचार्य श्री के जन्मके १० वर्ष पश्चात् १०७६ में कल्याणी चालुक्य विक्रमाङ्क (विक्रमादित्य षष्ठ) सिंहासनारूढ़ हुए, वे सन् ११२७ तक राज्य करते रहे। इस समय श्रीजिनदत्तसूरिजीकी अवस्था ५२ वर्ष की थी। विक्रमाङ्कके पुत्र सोमेश्वर तृतीय सन् ११२७ से ११३८ तक राज्य करते रहे जब सूरिजी ६३ वर्षके थे।

श्रीजिनदत्तसूरिजीके एक वर्ष पूर्व ही सन् १०७४ में दक्षिणमें चौल वंशीय राजाओंमें अन्तिम राजा अधिराजेन्द्रके समय तक विशिष्टाद्वैत मतके प्रवर्त्तक रामानुजाचार्य इस शैव राजाके साथ मैसूरमें ही रहे। इसके बाद अन्यत्र चले गये।

इसी समय मैसूरके होयसल वंशीय राजा जैन धर्मके आश्रय-दाता थे। प्रथम नरेश विट्टिदेवने सन् ११११ से ११४१ तक राज्य किया। यह समय श्रीजिनदत्तसूरिजीके ३६ वें वर्षसे ६६ वें वर्ष तकका है। इनके मन्त्री गंगराजने जैन-धर्मको आश्रय दिया।

गिरामें गुंफित किया, इसमें भैरव, रामकली मालकोष, केदार, सारंग आदि आदि रागें सम्मिलित हैं। रचना सरस एवं ओजयुक्त है।

श्रीजिनदत्तसूरिजीके समकालमें कलिङ्गके पूर्व गंगराजाओं-में से अनन्तवर्मा[1] राज्य करते थे। इनका राजत्वकाल १०७६ से ११४७ तकका है। सूरिजीके द्वितीय वर्षसे ७२ वें वर्षतक अनन्त वर्मा राज्य करते रहे। उड़ीसाका सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मन्दिर इन्हींके समयका बनवाया हुआ है। श्रीजिनदत्तसूरिजीके समयसे जगन्नाथके मन्दिरका समय भी सम्बद्ध है। इसके उपरान्त श्रीजिनदत्तसूरिजीकी जन्मभूमि तथा कर्मक्षेत्र गुजरातके सम-कालीन वातावरण पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। वैसे तो विहार क्रमसे सूरिजी गुजरात, युक्तप्रान्त, मारवाड़में विचरे थे।

गुजरातमें विक्रमकी सप्तम शताब्दीसे ही चालुक्योंका शासन था। पर आठवीं शताब्दीमें सिन्धके अरब सरदारोंके आक्रमणसे इस वंशकी शक्ति क्षीणप्राय हो गयी थी। १० वीं शताब्दीके अंतमें सन् ९६१ से १२ वीं शदीके अन्त भाग सन् ११४२ तक अणहिलवाड़पाटण में चालुक्य वंशीय राजाओंने शासन किया। चालुक्यवंशी प्रायः सभी नरेश जैनधर्म को सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे। साथ ही साथ प्रचारके सभी साधन राजाओंने सुलभ कर दिये थे। श्रीजिनदत्तसूरिजीके समयमें राजा कर्ण (राज्य काल १०६४ से १०९४ तक) राज्य करते थे, सन् १०६४में आचार्य श्री की अवस्था १९ वर्षकी थी। इस समय इन्हें सोमचंद्र नाम से

१ इसको पृथ्वीदेव द्वितीय (कलचुरी) ने युद्धमें परास्त किया था जैसा कि रायपुरसे हमें प्राप्त ताम्रपत्रसे जाना जाता है "विशालभारत" फरवरी १९४७

विभूषित हुए १० वर्ष हो चुके थे। सिद्धराज जयसिंह एवं महाराज परमार्हत कुमारपाल आचार्य महाराजके उत्कर्ष काल में राज्य शासन करते थे। जयसिंहकी सभामें श्वेताम्बर जैनाचार्य वादिदेवसूरि और कर्णाटकके दिगम्बर जैनाचार्य कुमुदचंद्रजी का सफल शास्त्रार्थ हुआ था। इस महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ के उस समय के बने हुए चित्र भी जैसलमेर के ज्ञान भंडार में पाये गये हैं जो "भारतीय विद्या" तृतीय भाग में प्रकाशित हुए है। सिद्धराज जयसिंहका शासन काल १०८४ से ११४२ तक था। कुमारपाल ५० वर्षकी अवस्थामें सन् ११४३ से ११७४ तक राजगद्दी पर विराजित थे। इनके प्रधान परिपोषक, उपदेशक आचार्य श्री हेमचंद्रसूरि थे। इन कुमारपाल के अस्तित्व समयमें आचार्य महाराजका अवसान हुआ। इस समय जैनोंका राजनैतिक जीवन अत्यन्त उच्चकोटिका था भारतवर्षमें उन्नतिको लहर दौड़ रही थी।

साहित्यिक स्थिति

आचार्य श्री जिनदत्त सूरि के समयमें गुजरात पर चौलुक्योंका आधिपत्य था। उनकी राजसभा के पंडितों और उच्च राजकर्मचारियोंमें जेनोंकी बाहुल्यता थी। श्री और सरस्वतीका अद्भुत समञ्जस्यथा।

यह देखा गया है कि प्रत्येक देशके साहित्कि विकाशमें उसकी राजनैतिक स्थिति भी बहुत कुछ अंशोंमें सहायक होती है। उन दिनों राजकीय वायुमंडल अत्यन्त स्वच्छ था। वे नरेश भी अपनी

क्षुद्र स्वार्थजनितवासनाकी पूर्तिके लिये जनता को अनुचित ढंगसे रक्तशोषणकी भीषण यंत्रणादायक मशीनमें पीसनेके अभ्यस्त नहीं थे पर प्रजाके सुख दुःखोंमें सहानुभूति रखनेवाले थे।

जैनों ने मानसिक विकासमें कभी भी पीछे पैर नहीं रखा। समय-समय पर अपनी अनुभूतियों को लिपिबद्ध कर, जनता को विचारनेकी प्रयाप्त सामग्री दी हैं। जैन साहित्य को सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि किसी भी धर्म या सम्प्रदायका अनुयायी या किसी भाषा का भाषी क्यों न हो? वह अपनी ऐच्छिक तृषा शान्तकर अपूर्व आनन्दका अनुभव कर सकता है। दीर्घदर्शी जेनाचार्योंने भारतकी विभिन्न भाषाओंमें अपने विचार गुम्फित किये हैं। जिनके अध्ययन-मननसे संसारका प्रत्येक मानव आत्मिक विकाशके उत्तम आदर्शोंको प्राप्ति कर सकता है।

गुजरातकी तत्कालिक साहित्यिक स्थितिका दिग्दर्शन यहां पर विवक्षित है। उन दिनों वहां विद्वानोंका जमघट था। राजाओंकी ओरसे उनका उचित सन्मान होता था। इतर प्रान्तीय विद्वान गुजरातके सरस्वती पुत्रोंकी कीर्ति को सुनकर वहां जाकर योग्यतानुसार उचित सन्मान एवं पुरष्कार प्राप्त करने में अपने को गौरवान्वित समझते थे। सरस्वतीकी सेवा करनेका सौभाग्य जैनाचार्यों एवं तत्कालीन गृहस्थों को प्राप्त था। जैनामुनियोंने उनकी अभ्यर्थनाको मान देकर, उनके गृहोंमें रहकर, विविध विषय प्रतिपादक ग्रन्थ निर्माण कर सरस्वतीके मंदिरमें भेंट चढ़ाये।

कहना अनावश्यक न होगा कि उस युगका जैन गृहस्थ केवल कलम पर ही अधिकार न रखताथा। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर तलवारसे भी एक वीर यौद्धिककी भाँति रणक्षेत्रमें क्रीड़ा करना जानता था।

उस समयकी साहित्य सरिताके प्रवाह को प्रवाहित करने वाले, अपने वर्षोंके ज्ञान और तपोबलसे मानव कल्याणकी कामना करने वाले एवं भारतीय मस्तिष्कके उच्चत्तम विचारत्तेजक भावों तथा विविध भाषा-विभाषाओंकी रक्षा करने वाले उत्कृष्ट मुनि पुङ्गवोंमें आचार्य श्री नवाङ्गवृत्तिकार श्रीमद् अभयदेवसूरि, श्रीनेमिचंद्रसूरि, श्रीचंद्रसूरि, मल्लधारिअभदेयव और श्रीहेमचंद्रसूरि (ये आचार्य प्रकाण्ड पंडित उद्भट दार्शनिक और सफल आलोचक थे) आचाय श्रीजिनवल्लसूरिजी चैत्त्वासीके विरूद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन चलानेके सौभग्यसे मंडित हैं --वीराचार्य गुणचंद्र (बृहत्तर महावीर जीवनके रचयिता) देवभद्रसूरि (प्रसिद्धगणाधीश तथा जैनकथा साहित्य तथा प्राकृतभाषा के समर्थ विद्वान एवं विवेचक) आचार्य श्री वर्द्धमानसूरि द्वितीय, वादिदेवसूरि जो अनेकों इत्तर प्रान्तके पर्य्यटक पंडितों को राजसभामें अपनी प्रकाण्ड विद्वताके एवं तर्क युक्त दलीलोंके बल पर वादमें पराजित करनेकी अपूर्व क्षमता रखते थे। दार्शनिक साहित्यमें आपकी गति महान् थी। —हमने आपके "स्याद्वाद रत्नाकर" का अध्ययन किया है जिसकी बड़ी खूबी यह हैं कि पूर्व पक्षकी युक्तियें आपने ऐसी दी हैं मालूम होता है

अब इनका खण्डन ही असम्भव है, परन्तु जब उनका खण्डन प्रारम्भ होता है तब तो बड़े-बड़े दार्शनिक चकाचौंध हो जाते हैं। मध्यप्रान्तके प्रमुख दार्शनिक दर्शन केशरी पंडित लोकनाथजी शास्त्री (जिनके समीप हमने भी न्याय शास्त्रका अध्ययन किया है) ने यहां तक कहा डाला था कि "ऐसा सुसक्ष्मतम प्रतिभा सम्पन्न विद्वान हमारे यहां आजतक कोई नहीं हुआ"। देवचंद्रसूरि हेमचद्रसूरि यशोदेवसूरि आदि अनेक आचार्य एवं मुनिवर्यों ने साहित्यकी न्याय (न्यायशास्त्र के विकाशका यह युग मध्यान्हकाल माना जाता है) दर्शन, व्याकरण, भूगोल, षट्दर्शन, इतिहास, काव्य, नाटक, अलंकार आदि विभिन्न विषयों पर संस्कृत प्राकृत और तत्कालीन लोकभाषामें निर्म्माण कर एवं अजैन विद्वानोंकी कृतियों पर विस्तृत वृत्तियें रचकर और उनकेग्रन्थोंको प्रतिलिपिएं कर जैन भंडारोंमें सुरक्षित रखे हैं।

उस समयके सद्गृहस्थों ने साहित्य विकाशमें मूल्यवान सहायताएं प्रदान कीं थीं जो राज्यके अति उच्च उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर विराजित थे जिनमें षड्भाषाचक्रवर्ती श्रीपाल और उसका पुत्र सिद्धपाल मुख्य है। श्रीपाल प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी बड़े-बड़े उद्भट्ट वादियों को परास्त करने की क्षमता रखते थे। कार्योंकी बाहुल्यता रहते हुए भी गृहस्थोंका साहित्य प्रेम अवश्य अभिनन्दनय और वर्त्तमान गृहस्थोंके लिये अनुकरणीय है।

उपर्युक्त आचार्यों एवं गृहस्थों ने जो कुछ भी साहित्य निर्माण किया है वह आज भी समस्त संसारके विद्वान एवं गवेषियों को

आश्चर्यान्वित किये बिना नहीं रहता, हमें खेद है कि स्थान एवं समयाभावसे इस कालके जैन जैनतर साहित्य पर प्रकाश नहीं डाल सकते।

सूरिजी-कालीन अपभ्रंश साहित्य—

भारतीय भाषातत्त्व विशारद भलि भाँति जानते हैं कि भगवान् महावीर और गौतम बुद्ध आदि ऋषि-मुनियोंने अपने औपदेशिक क्षेत्रके लिये—तत्कालमें प्रचलित लोकभाषा को माध्यम बनाया था, तदनंतर जहां-जहां जैन महात्मा-मुनि विचरण करते हुए पहुंचते उन्हें वहां पर अपनी—परकल्याणकारक औपदेशिक—वाणी को लोकभाषा द्वारा ही जनताके सम्मुख उपस्थित, तथा उस प्रान्तके लोगोंकी मानसिक योग्यतानुसार उनके मस्तिष्क में विचारत्तेजक भावनाओं को चिरस्थायी बनाने के लिये साहित्य सृजन भी लोकगम्य भाषामें ही करते थे। उनका उद्देश्य अपनी प्रकाण्ड विद्वत्ताका परिचय देनेका न था पर मानव मात्र आत्मिक कल्याण—आध्यात्मिक लाभ कैसे प्राप्त करें, यह था। पर आज उनकी रचनाएं हमें भाषाविज्ञानकी दृष्टि से अद्भुत मालूम होतीं हैं। हमारा सुनिश्चित मत रहा है कि जब तक इन लोकभाषामय ग्रन्थोंका तलस्पर्शी अध्ययन नहीं किया जायगा तब तक भारतीय भाषाविज्ञानके मूलगत रहस्य, शब्द व्युत्पत्ति, रूप आदिको समझना बड़ा कठीन हो जायगा। प्रस्तुत चरितनायक कालीन साहित्यिक स्थिति को देखने से अपभ्रंश को उपेक्षा कैसे की जा सकती है, जो आधुनिक भाषाओंकी जननी है।

अपभ्रंश प्राकृतभाषा का ही एक अंग है। प्राचीन जैनागम आचाराङ्गसूत्र और पतञ्जलो कृत महाभाष्य में इस भाषा के कुछ शब्दों का पता लगता है ! कोई भाषा हो, जब उसमें साहित्यिक रचना प्रारम्भ होने लगती है तब उसे क्रमशः व्याकरण के नियमों में जकड़ देते हैं। ठीक वैसा ही हाल अपभ्रंश का रहा। कालीदास के समय में तो इसका प्रचार-प्रभाव सामान्य था। पर बाद में इतना बढ़ गया कि अच्छे-अच्छे विद्वान् इस में रचना करने में अपना गौरव मानने लगे, वल्लभी राजाओं के ताम्रपत्रों से तो यही फलित होता है कि जो अपभ्रंश में रचना करना नहीं जानता उस पंडित को राजसभा में सम्मान नहीं मिल सकता था, यहां पर न भूलना चाहिये कि हिन्दी-काव्य-धारा के प्रथम निर्माता हमारे अपभ्रंश के कवि है। राहुलजी शब्दों में—

अपभ्रंश के कवियोंको विस्मरण करना हमारे लिये हानिकी वस्तु है। यही कवि हिन्दो काव्य-धारा के प्रथम स्रष्टा थे। वे अश्वघोष, भास, कालिदास और बाणकी सिर्फ जूठी पत्तलें नहीं चाटते रहे, बल्कि उन्होंने एक योग्य पुत्रकी तरह हमारे काव्य क्षेत्र में नया सृजन किया है। नये चमत्कार, नये भाव पैदा किये.................. ....

हमारे विद्यापति, कबीर, सूर, जायसी और तुलसी के येही उज्जीवक और प्रथम प्रेरक रहे हैं। उन्हें छोड़ देनेसे बीचके काल में हमारी बहुत हानि हुई और आज भी उसकी संभावना है।"

हिन्दी काव्य धारा प्र० पृ-१२-३

"जैनोंने अपभ्रंश—साहित्य की रचना और उसकी सुरक्षा में सबसे अधिक काम किया"

वही पृ० ३६

राहुलजीकी उपर्युक्त उदार विचार धारा में स्वर मिलाते हुए हमें बिना किसी संकोचके कहना चाहिये कि आज भारत में जितनी भी प्रांतीय भाषा-उपभाषाएं हैं—उन सभी की जड़ अपभ्रंश में मिलेगी, खासकर हिन्दी, मराठी, गुजराती और बंगाला भाषा के प्राचीन साहित्य को देखेंगे तो बहुसंख्यक तत्सम और तद्भवशब्द अपभ्रंश के ही मिलेंगे।

भारतीय भाषाविज्ञानकी अपेक्षासे जैन—अपभ्रंश साहित्यका अध्ययन मनन आवश्यक ही नहीं, पर अनिवार्य है। सरहपा, शबरपा स्वयंभू भुसुकपा, महाकवि पुष्पदंत, देवसेन, शान्तिपा, योगीन्दु, रामसिंह, धनपाल, कनकामर आदि अपभ्रंश भाषाके कवि आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी के पूर्व हो गये हैं। इन में से कई तो—जैसे स्वयम्भू, पुष्पदन्त—अत्यन्त उच्चकोटि के सफल कलाकार और कुशल शब्दशिल्पी थे।

बारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रवाह बहुत उत्तम रीति से चलता रहा। इस काल के विद्वान् आचार्यों में श्री अभयदेव-सूरि,—(जयतिहुयण स्तोत्र, रचना काल वि० ११११८) साधारण, (विलासवइ कहा, र० का० ११२३) श्री वर्द्धमानसूरि (ऋषम चरित्र, ११६० इस काव्य में अपभ्रंश का—विशेष भाग आता है अतः इसे भी इसी कोटि में लिखा गया है, श्री देवचन्द्र सूरि—(शांतिनाथ चरित्र, वि० ११६०) अब्दुल रहमान (संदेश राशक भारतीय भाषा और भावों की सृष्टि करने वाले विदेशियों में इन का स्थान सर्व प्रथम है।) लक्ष्मण गणि (सुपासनाह चरियं,

वि० ११७७, इस में भी अपभ्रंश का भाग हैं वादि देवसूरि और आचार्य हेमचन्द्रसूरि प्रमुख हैं। प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओंकी सुरक्षामें आपका प्रधान सहयोग रहा। खेद है कि ऐसे विद्वानोंको भी हमारे हिन्दीके विद्वान् आजतक समुचित रूपेण नहीं पहचान पाये। इन विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराते हुए, उस समय के मानव-समाजकी अनुभूतियों का संग्रह किया है जो प्राचीन होते हुए भी वर्तमान में उनसे हमें बड़ी प्रेरणाएं और आध्यात्मिक शान्ति का प्रखर आलोक—मिलते हैं। यदि इन ग्रन्थों को केवल भाषाविज्ञान की दृष्टि से ही अध्ययन का विषय बनाया जाय तो निःसन्देह हिन्दी भाषाविज्ञान का मुख उज्जवल हुए बिना न रहेगा। अफसोस है कि इन में से बहुत ग्रन्थों का प्रकाशन वर्षों पूर्व हो चुका है पर हिन्दी के उच्चश्रेणि के कहे जाने वाले भाषातत्वविदों ने न जाने इनका उपयोग अपने अध्ययन में क्यों नहीं किया।

हिन्दी भाषा के प्रारम्भिक इतिहास में आचार्य श्री जिनदत्तसूरि जी का स्थान उच्च कोटि का है। आप के अस्तित्व समय में अपभ्रंश का साहित्य प्रर्याप्त उन्नत रहा। आपने भी अपनी दीर्घ साधना स्वरूप तीन ग्रन्थ इस भाषा में निर्माण किये (गा० ओ० सि०xxvii)जिनका कुछ अंश पंडित राहुल सांकृत्यायनने हिन्दी काव्यधारामें उद्धृत किये हैं। परन्तु उन पर राहुलजीने जो छाया

लिखी है वह इतनी भद्दी, असंगत और कहीं२ तो विषय से काफी दूर रहने वाली है। राहुलजी जैसे उच्च कोटि के विद्वान् को बिना किसी भी बातको समझे प्रतिच्छाया करने का दुःसाहस कदापि न करना चाहिये। प्रत्येक विषयके मूलगत रहस्यके वास्तविक मर्मको समझनेके लिये विशेष प्रकारकी मानसिक पृष्ठभूमि तैयार करनी पड़ती है।

आचार्य महाराज का काल चौलुक्य-युग था, जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों से प्रमाणित किया जा चुका है। गूजरात के इतिहास में यह काल स्वर्णयुग माना गया है। इसमें कई वास्तविकताएं है। यही एक ऐसा राजकुल रहा है जिसने न केवल अपने समुज्ज्वल—प्रखर प्रतापसे अपने पूर्व पुरुषोंकी कीर्ति कौमुदीका ही चारों ओर विस्तार किया, अपितु स्पष्ट कहा जाय तो सारे गूजरात के सांस्कृतिक स्तर को उच्च स्थान प्रदान कर एक नवीन आदर्श उपस्थित किया,। तत्कालीन राष्ट्र, धर्म और समाज इन तीनों का विकाश बड़ी सीमा तय चुका था।

भारतवर्ष कला कौशलमें सदैव अग्र रहा है। यहां के शासक भी कलाप्रेमी और उसके उन्नायक रहे है। अभिलषित समयमें गूजरात शिल्प स्थापत्य कलामें बहुत ऊँचा स्थान रखता है, बल्कि स्पष्ट कहा जाय तो तत्कालीन—गूजरात के कई स्थापत्यावशेष तो ऐसे हैं जो भारतीय तक्षण कला का प्रतिनिधित्व आसानी से कर सकते हैं। उस समयके कुशल शिल्पिओंके विविध विषयक उदात्त-विचारोत्तेजक--आदर्शोंसे परिपूर्ण मस्तिष्क और सुकुमार हस्तं-

कमल द्वारा प्रवाहित प्रवाह के फल स्वरूप जो कलात्मक रचनाएं उद्भवित हुई है वे आज भी उस स्वर्ण युगकी सुखद स्मृतियों को लिये हुए हैं।

चित्रकलामें गूजरात कितना आगे रहा है, इस विषय पर परिपूर्ण प्रकाश डालने वाले प्राचीन साधन बहुत ही अल्प उपलब्ध हुए हैं। पर हमें तो यहां इस पर सीमित ही विचार करना है। आचार्य श्री के समय या तो उसके बाद के कुछ चित्र जैन ताड़-पत्रीय पुस्तिकाओं के—काष्ट फलक पर सुन्दर रेखाओं रंग से चित्रित प्राप्त हुए हैं, वे भारतीय मध्यकालीन चित्र कला के उत्कृष्ट नमूने भले ही न कहे जा सकें, पर रङ्ग और रेखाओं के विकाश की दृष्टिसे इनका स्थान ऊंचा है। तत्कालीन चित्र कला के तत्वोंका अध्ययन इनके सूक्ष्मतर परिशीलनपर निर्भर है। हमें स्पष्ट शब्दों में बिना किसी अतिशयोक्ति से कहना चाहिये कि मध्य-कालीन चित्र कलाके मुखको उज्वल करने वाले अनेकों—मौलिक साधनों का निर्माण जैनों ने किया है जो आजतक बहुत कुछ अंशों में उपलब्ध भी है। परन्तु खेद है कि भारतीय चित्र कलाके मर्मज्ञों का ध्यान अभी तक इस ओर आकृष्ट नहीं। वे पुकार अवश्य रहें हैं कि मुगल पूर्व-कालीन चित्र नहीं मिलते, पर हम उन्हें विश्वास दिला देना चाहते हैं वे खोज ही नहीं करते। अनुभव तो यह बतला रहा है कि खोजी को किसी भी वस्तुको कमी नहीं रहती। अस्तु

भारतवर्षकी इस ऐतिहासिक, साहित्यक, कला तथा राजनीतिक पृष्ठ भूमिपर इस प्रधान नायकका चित्र अंकित है। इन राजाओंमें से

बहुतों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे सूरिजी का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। क्योंकि मानव संस्कृतिके शाश्वत सिद्धान्तों के उपदेश इनके द्वारा ही संभव है। आध्यात्मिक संस्कृतिके अमरतत्वका जिन्हें पान किया है वेही स्पष्ट रूपसे संसारको उनके वास्तविक सुखका-मोक्षका—मार्ग प्रदर्शन करा सकते हैं। प्रभाव—उन्हींका पड़ेगा जो कर्मठ होगा। भारतीय मानव समाजका इतिहास बतला रहा है कि मानव संस्कृतिका जितना भी विकास आजतक हुआ है केवल भौतिकवादके परमत्यागी और अध्यात्मवादके समर्थक इन ऋषि मुनियोंकेशुभ प्रयत्नोंसे ही।प्रस्तुत जीवन चरित्र पढ़नेसे आप लोगोंको मालूम होगा कि आचार्य महाराजका प्रत्यक्ष रूपसे भी कुछ राजाओंसे सम्बन्ध था। अजमेरके चौहान नरेश अर्णोराज (आनल्ल-आना) को एवं त्रिभुवनगिरि के यादव राजा कुमारपाल। (जिसकी प्रतिकृति जेसलमेरके भंडारमें सूरिजीके चित्रके साथ हैं) यह सूरीश्वरजीके उत्कृष्ट चारित्र एवं.विद्वज्जनसुशोभित प्रबल प्रतिभाका ही विकाश समझना चाहिये।

सूरिजी के अद्भुत कार्य—

उपर्युक्त विवेचन में बताया गया है कि श्रमण संस्कृति को कलंकित करने वाले चैत्यवासियोंका जैन समाज में बाहुल्य था। आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरिजीके समय में भी इन लोगोंका विकाश तो नहीं, पर समाजमें स्थान अवश्य था। उत्कृष्ट चारित्र-पात्र आचार्य श्रमणसंस्कृति का पतन कैसे देख सकते थे? आचार्य

महाराज ने मरुभूमिमें विहार कर जयदेवाचार्य जिनप्रभाचार्य आदि विद्वान चैत्यवासी आचार्यों को प्रतिबोध दे कर अपने गुरु द्वारा प्रवर्तित कार्यके वेग को केवल सुरक्षित ही न रखा पर अग्रिमोन्नतिके लिये नूतनतम क्षेत्र भी निर्मित किया। जैसा कि प्रस्तुतः ग्रंथ से विदित होता है।

सूरिजीने अपने जीवनमें "वसुधैव कुटुम्बकम्" आदर्शको खूब चरितार्थ किया था। आपका उपदेश क्षेत्र जैन समाज तक सीमित न होकर मानवमात्रके हृदय तक विस्तृत था। इसी उदारताके बल पर आपने अपने चारित्रिक प्रभावसे एकलक्ष तीसहजार नूतन जैन निर्मित किए। जैन समाजके सम्पूर्ण इतिहासमें यह अभूतपूर्व घटना है। यद्यपि कहा अवश्य जाता है कि वीरात् ८४ में उपकेश गच्छीय रत्नप्रभसूरिजी ने बहुसंख्यक जैन बनाए थे जो ओसवालके नामसे प्रसिद्ध हैं, परन्तु बाबू पूरणचंद्रजी नाहर, कस्तूरमलजी बांठिया, महामहोपाध्याय डा० रायबहादुर गौरी शंकरजी हीराचंद्रजी ओझा एवं प्रस्तुत ग्रन्थ लेखक आदि पुरातत्वान्वेषी सज्जनों ने ऐतिहासिक दृष्टसे अनेक अकाट्य प्रमाणोंसे उपर्युक्त बातकी सर्वाङ्गीण असत्यता साबित करदी है।

आचार्यश्रीका साहित्यिक जीवन—

तत्वतः देखा जाय तो मानव जीवन ही मरणका पूर्व रूप है। जीवन आदर्श रूपसे यदि यापित न हो सका तो जीवनकी वास्तविक परिभाषासे पर्याप्त पार्थक्य विदित होगा। जीवन और मरण उन्हीं के सार्थक हैं जिनके जीवनसे आनन्द एवं मरणसे दुःखा-

नुभूतिका अनुभव होता हो। हमारी रायसे प्रत्येक व्यक्तिके जीवन में व्यक्तित्वकी प्रतिच्छाया न हो तो मानव समाजके लिये ही नहीं पर आत्मश्रेयार्थ भी भार रूप है। हां! व्यक्तित्व निर्माणकला अवलम्बित है वास्तविक ज्ञानरूपी सुधात्मक मानसिक प्रवाह पर अर्थात् आध्यात्मिक चिन्तनशीलता पर। ऊपर हम बता चुके हैं कि वह युग ही गहन चिन्तन प्रधान था, जिस युगमें मानव की उच्चतम भावनाओंका मापदण्ड ही आध्यात्मिक मनोवृत्ति हो ऐसी स्थितिमें युगप्रवरोंकी मानसिक परिपक्वताका विकाश किस श्रेणीपर पहुंचा था, यह विषय ही बुद्धिगम्य है।

प्राय: प्रत्येक युगके युग-पुरुष अद्वितीय प्रतिभा लेकर ही मानव संसारमें अवतीर्ण होते हैं। हमारे पूजनीय आचार्य श्रीजिनदत्त सूरीश्वरजी महाराज भी सूक्ष्मतर प्रतिभा की अतुल संपत्ति संचरित करके ही अवतीर्ण हुए। आचार्य श्री के पूर्व अध्ययनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत ग्रन्थमें उल्लिखित है, वही इनकी कुशाग्र-बुद्धिका परिचायक है। आगे चलकर आपका अध्ययन परिपक्व विचारधाराओं को ले कर इनके साहित्यिक ग्रन्थोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रस्फुटित हुआ। आचार्य महाराज पूर्व समकालीन एवं एवं परवर्त्ती सब युगप्रवर प्रतिभासंपन्न कवि तथा श्रेष्ठ दार्शनिक विख्यात हुए, उन सभीमें अपना स्वतन्त्र स्थान रखते हैं।

समयका प्रभाव साहित्य और कलापर अवश्य पड़ता है। तत्कालीन धार्मिक संस्कृतिका दिग्दर्शन तो ऊपर करा ही चुके हैं, तदनुसार इनकी साहित्यिक रचना अधिकतर धर्मसे सम्बन्धित हैं, पर भाव और

भाषाविज्ञानके आलोचनात्मक इतिहास में इन ग्रन्थों का स्थान कम महत्वपूर्ण नहीं। आचार्य महाराजका साहित्यिक जीवन कबसे प्रारम्भ होता है निश्चिततया कहना जरा कठिन है, कारण कि तन्निर्मित समस्त ग्रन्थोंमेंसे किसी भी ग्रन्थमें रचनाकाल निर्दिष्ट नहीं है। अत: वयानुसार साहित्यिक विकाशके इतिहास पर तब ही प्रकार डाला जा सकता है, जब कि इनके समस्त साहित्यका अन्त:परीक्षण किया जाय। यहाँ हमारा स्थान सीमित है।

आचार्य महाराजका साहित्य प्रस्तुत ग्रन्थलेखकों ने तीन भागों में विभाजित किया है—स्तुति, औपदेशिक एवं प्रकीर्णक। स्तुति-परक ग्रन्थ रचनाओंमें गणधरसार्धशतक अत्यन्त उच्चकोटिका ग्रन्थ है जिसका महत्व गुजरातके इतिहासकी दृष्टिसे बहुत ही अधिक है। यदि हमें विस्मरण न होता हो तो गूर्जरभूमिके लिए "गुज्जरत्ता" शब्दका सर्वप्रथम प्रयोग आपने ही इस ग्रन्थकी गाथामें किया है। औपदेशिक साहित्य मानव संस्कृतिके उत्थानमें मूल्यवान् सहयोग देता है, क्योंकि सामान्य मानवों को इनसे अपना जीवन स्तर उच्चकोटिमें लानेकी अद्भुत प्रेरणाएं मिलतीं हैं। महापुरुषों द्वारा कहे गये उपदेश उनके कोमल हृदयपर अपना स्थायी निवास कर लेते हैं। "सवि जीव करूँ शासन रसी इसी भाव दया मन उल्लसी" उल्लेखके सिद्धान्तका साक्षात्कार आपके साहित्यमें होता है। साथ ही साथ उस समय चैत्यवासका जो विषैला प्रचार था, उसे उन्मूलन करनेके लिए आपने नियंत्रित शक्तिका समुचित व्यय किया। आप ही के समयसे चैत्यवासियोंके प्रभावकी अवनति प्रारम्भ हुई।

आपके उत्कृष्ट विशुद्ध चारित्र्यके विषयमें हमें अपनी ओरसे कुछ कहना नहीं। आपका औपदेशिक साहित्य ही एक स्वरसे इस प्रकारकी विचारधारा प्रवाहित करता है जिसकी तुलना हरिभद्र सूरिजी महाराजके ऊपरि कथित वाक्योंसे सरलतापूर्वक की जा सकती है।

चरित्रनायक और अपभ्रंश भाषा--

श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज ने संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं में अपने जिन ग्रन्थोंकी रचनाएं की हैं, वे केवल विषयकी दृष्टिसे ही महत्व पूर्ण नहीं परन्तु तत्कालीन साहित्य और भाषाविज्ञान के इतिहास की दृष्टि से बहुत ही मूल्यवान् हैं। उभय भाषाओं पर आपका पूर्णाधिकार था।

प्रत्येक समय में जैन साहित्य के रचयिताओं ने लोकभाषा का समादर किया है। अपभ्रंश भाषा भी एक समय में भारत की उन्नतशील एवं प्रधान भाषा मानी जाती थी। उच्च श्रेणि के विद्वानों इस भाषामें रचना करनेमें अपनेको गौरवान्वित समझते थे। परन्तु हमें कहते बड़ा हर्ष हो रहा है कि इस भाषा के साहित्य भण्डार को जितना परिपुष्ट जैनश्रमणों ने दिया है उसका शतांश भी जैनेतर विद्वानों ने नहीं, क्योंकि लोकभाषा होने से साहित्यिक रचना में उपयोग करना सम्भवतः उनकी दृष्टि में आत्म-सम्मान के विरुद्ध की बात हो तो कोई आश्चर्य नहीं। समयानुसार जो विद्वान मानसिक भोजन नहीं दे सकता उसे किन शब्दों से सम्बोधित किया जाय? स्मरण रखना चाहिए कि लोकभाषा में

प्रचारित सिद्धान्त ही सर्वग्राह्य हो सकते हैं, इसका क्षेत्र सम्पूर्ण मानव जगत है। वृद्धवादी ने सिद्धसेन दिवाकर को अपनी उच्च श्रेणिकी संस्कृत वाग्धारा एवं अकाट्य युक्तियों के बल पर पराजित नहीं, पर लौकिक यानो जनता की भाषा के बल पर उन्हें विजित किया था।

आचार्य महाराज श्री जिनदत्तसूरिजी का स्थान हिन्दी और अपभ्रंश भाषा के इतिहास में महत्व पूर्ण है। आपने इस भाषा में रचना कर हिन्दी भाषा विज्ञान के लिए अध्ययन की सुन्दर से सुन्दर सामग्री प्रदान की है। परन्तु बड़े ही परिताप के साथ लिखना पड़ रहा है कि अद्यावधि प्रकाशित सभी हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहासों एवं भाषा विज्ञान विषयक ग्रन्थों में इन उत्कृष्ट साहित्यकार का नाम तक नहीं!

हम स्वीकार करते हैं कि हिन्दी भाषाविज्ञान विषयक अन्वेषण अभी बाल्य काल में है, अतः इस विषय पर सार्वभौमिक प्रकाश किसीने नहीं डाला। भाषाविज्ञान पर डॉक्टरेट प्राप्त करना अलग बात है। उसके समस्त अंग-प्रत्यंग पर गहरा अभ्यास करना दूसरी बात है। यह कार्य सीमित समयमें अध्ययन करने वालोंका नहीं अपितु इसी कार्यमें जीवन लगा देनेवाले श्रीमान् जिन विजयजी या डॉ सुनीति कुमार चटर्जी जैसे अध्यवसायी विद्वानोंका है। भाषामें ग्रन्थ रचनाका काल हिन्दीके वीरगाथाकालसे कुछ पूर्व का है। हिन्दी साहित्य में आज तक वीरगाथा कालीन

ग्रन्थोंको बहुत उच्च स्थान प्राप्त था। परन्तु इन के समर्थनमें मूलाधार अकाट्य तत्वोंका प्रायः अभाव था। वर्तमान में भी कई लोग वास्तव में इस काल के कुछ ग्रन्थों को प्राचीन मानते भी होंगे, परन्तु तत्कालीन अपभ्रंश-जैनसाहित्य एवं भाषाविज्ञान शैली की कसौटी पर यदि उन ग्रन्थों को रखें तो शायद् ही कोई ग्रन्थ इस काल में ठहर सके। चर्चरी, काल स्वरूप और उपदेश रसायन ये तीनों ग्रन्थ आचार्य महाराज के अपभ्रंश भाषा में गुम्फित है। भाषाविज्ञान को दृष्टि से इन ग्रन्थों का महत्व इस लिए भी है कि अपभ्रंश भाषा के अन्तिम और हिन्दी के प्रारंभिक काल अर्थात् वयःसन्धिकालीन रचना होनेसे प्राचीन हिन्दी भाषाविज्ञान की अपेक्षा से हिन्दी के सुयोग्य पुत्र अधिक अध्ययन कर इस विषय को प्रकाश में लावेंगे।

आचार्य महाराज के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी (जो जैन संघ में मणिधारी नाम से विख्यात हैं) ने अल्पवय में भी विविध प्रकार के शास्त्रों का अवगाहन कर लिया था।

जिनदत्तसूरिजी महाराज यति और गद्दीधर भी थे, ऐसी आवाज कभी कभी सुनाई देती है। यद्यपि जिनधर्म कथित दशविधलक्षणयुक्त यति ही के अर्थ सूचनमें यदि इस शब्दका प्रयोग किया जाता हो तब तो किसी भी प्रकारका अनौचित्य नहीं, पर वर्तमान रूढ़ार्थसूचक यति के अर्थमें कहा जाता हो तो वर्त्तमान जनता तो क्या पर जिनदत्तसूरिजी महाराजके ग्रन्थ ही

इस कथन के सरासर विरुद्ध जा रहे हैं* । जैसा कि "सन्देह-दोलावली' से स्पष्ट है। उपर्युक्त पंक्तियें लिखी है, उनका मूलाधार यह और सम्बोधप्रकरण है। इतना तो संसारका प्रत्येक मानव समझ सकता है कि त्यागपूर्ण संस्कृतिमें और वह भी प्रभु महावीर, सुधर्मा स्वामीके सुयोग्य पट्टपरंपरामें—जहां कि केवल त्यागियोंका ही साम्राज्य है—वेशधारियोंको स्थान कहाँ ? आध्यात्मिक साधकों की पंक्तिमें भौतिकवादियों को स्थान मिल सकता है ? क्या इस प्रकारके आचरणसे जैनसंस्कृति कलङ्कित नहीं होगी ?

१२ वीं शदीमें भी जो कुछ आचरणात्मक साहित्य उपलब्ध होता है उनमें भवन्निर्मित वाङ्मय सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि विकृति दूर करके विशुद्धतम सांस्कृतिक प्रवाह प्रवाहितकर जैन समाजपर आपने जो उपकार किया है उसे हम कैसे भूल सकते हैं ?

श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराजका पदव्यवस्थापत्र (जो प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित है) आचार्य महाराज की प्रथम रचना मानने को जी ललचाता है कारण कि इस पर चैत्यवासियों का आंशिक प्रभाव स्पष्ट है।

---

* आपके चारित्र संबन्धी उच्च विचारधाराका परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ ही में उल्लिखित है। उदरपूर्ति निमित अनेक प्रकारके भौतिक संस्कृतिके महत्व को बढ़ानेवाले साधनों का प्रयोग करना जिनदत्तसूरिजी ने चैत्यवासी आचार्यों को उपसंपदा ग्रहण करते समय सर्वथा निषिद्ध किया था और आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरिजीको महाराज दूर्लभकी राजसभामें भक्षणार्थ ताम्बूल देते समय उनने निम्नोक्त श्लोक कहा था, जैसे—

ब्रम्हचारियतीनां च, विधवानां च योषिताम्
ताम्बूल भक्षण विप्राः ! गोमांसान्न विशिष्यते

देखिये "खरतर गुर्व्वावली" पृ० ३

जैसलमेर भंडारस्थ फुटकर पत्रोंमें आनन्दवर्द्धनाचार्य निर्मित "ध्वन्यालोकलोचन"नामकअत्यन्त महत्वपूर्ण ध्वनि विषयक ग्रन्थ लिखवाया था जिसके अन्तिम पत्रका चित्र "भारतीय विद्या" भाग ३ में प्रकाशित है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है :—

(१)·· पूर्ण चेदं काव्यालोकलोचनं ··········

(२)······· लब्धप्रसिद्धेः श्रीमदाचार्याभिनवगुप्तस्य ॥६॥ समाप्तं चेदं लोचन ग्रन्थः ॥

(३)··········ध सु० १ रवौ ॥ श्रीमज्जिनवल्लभसूरि—
शिष्यः श्रीमज्जिनदत्तसूरिः प्रवरविधिधर्म्मसर·········

(४)···········प्रतिवादिकरटिकरटविकटरदपा············
च्चरणेन्दीवरमधुकरो विज्ञातसकलशास्त्रार्थः ·············

(५)··········· जिनचन्द्रनाम्नामलेखि ·· ···

युगप्रवरकी शिष्य परम्परा में जितने भी ग्रन्थकार हुए उन सभीमें मेरुसुन्दरोपाध्याय को हम सोलहवीं शतीके सुप्रसिद्ध लोकभाषामय गद्य साहित्यके उत्कृष्ट लेखकोंमें उच्चतर स्थान देते हैं। एतद्-विषयक १८ ग्रन्थ आपने निर्माण कर जनताको सामयिक मानसिक, आध्यात्मिक विकाशोन्मुखी भोजन प्रस्तुतकर, भारतीय भाषा विज्ञानकी प्रचुर सामग्री एकत्र ही न की पर साथ ही साथ आचार्य महाराज द्वारा प्रवर्त्तित साहित्यिक शैलीके प्रवाहको भी सुरक्षित रखा। शिष्य परम्पराओंमें होनेवाले उत्कृष्ट मुनियोंने उच्चतम विद्वद्भोग्य एवं लोकभोग्य साहित्यकी उभयशाखाएं पल्लवित-पुष्पित कीं, जिनका विस्तृत परिचय ग्रन्थमें पृष्ठ ६१ से ७७ तक दिया गया है।

आचार्य महाराज ने अपभ्रंश भाषामें रचना जिस प्रकार प्राचीन हिन्दी या अपभ्रंश से प्रभावित हिन्दी का सूत्रपात किया ठीक उसी प्रकार इनके स्तुति विषय को जितने भी तत्कालीन एवं

परवर्तिकालीन पद्योपलब्ध होते हैं वे भी आचार्य महाराज प्रवर्तित प्रियभाषाशैली में ही गुम्फित हैं। उन में से प्राप्त प्राचीन पद्यों का संग्रह प्रस्तुत ग्रन्थ लेखकों ने बड़े हो परिश्रम पूर्वक तैयार कर, भाषाविज्ञानवेत्ताओं लिए अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान कर, प्राचीन हिन्दी साहित्य का मुख उज्वल किया है। हम हिन्दी साहित्य के उद्भट आलोचकों को उपालम्भ तो नहीं देंगे परन्तु विनम्र शब्दों में इतना ही कहेंगे कि इस प्रकार ११ वीं शती से लगाकर २० वीं शती तक के शृङ्खलाबद्ध भाषाविज्ञान के साधनों का उपयोग अपने अध्ययनमें अवश्य करें।

'युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि' नामक ग्रन्थ, जो आप के करकमलों में विराजित है, इसे लेखकों ने विविध प्रकार के तद्विषयक प्राप्त सभी साधनोंके अध्ययन मननके बाद तैयार किया है, जो जैनाचार्योंके इतिहास को आंशिक पूर्त्ति करता है।

प्रान्तमें अपने परमपूजनीय परमोपकारी गुरुवर्य्य श्रीउपाध्यायपद विभूषित १००८ श्रीमान सुखसागरजी महाराज एवं आदरणीय ज्येष्ठ गुरुबन्धु मुनिवर्य्य श्री मंगलसागरजी महाराज के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते एवं श्रीयुत अगरचंदजी एवं भँवरलालजी नाहटा को बधाई देते हुए, जनतासे अनुरोध करते हैं कि प्रस्तुत ऐतिहासिक जीवनका अधिकाधिक अध्ययन मनन कर आत्मालक्षी जैन संस्कृति को सार्थक कर आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करें।

जैन भवन पंचाल
कलाकर स्ट्रीट, कलकत्ता।
ता० ३-५-१९४७

मुनि कांति सागर
M. R. A. S.

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि



(जैसलमेर भंडार की काष्ठपट्टिका से)

ॐ

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि

पहला प्रकरण

जन्म और दीक्षा

गुजरात प्रान्त में धवलक [1] नामक एक नगर है। वहां क्षपणक [2] भक्त हुंबड़ ज्ञातीय श्रेष्ठी वाछिग नामक श्रावक निवास करते थे। उनकी पुण्यवती स्त्री वाहड़देवी की रत्न-

---

१ जिसे आजकल धोलका कहते हैं। पट्टावली में धुंधुका भी लिखा है पर प्राचीन, एवं प्रामाणिक ग्रन्थ गणधर सार्धशतक बृहद्वृत्ति के अनुसार धोलका ठीक है।

२ "तपागच्छ श्रमण वंशवृक्ष" के पृ० २७ की टिप्पणी में मुनि दर्शनविजयजी ने क्षपणक शब्द के लिए "क्षपणक ए तप प्रधान जैन श्वे० साधुनोज नामान्तर छे" लिखा है पर हमारे खयाल से यहां पर क्षपणक शब्द का प्रयोग दिगम्बर साधु के पर्याय रूप में आया है। श्वेताम्बर होने पर यहां "क्षपणक भक्त" शब्द लिखना अनावश्यक था। यद्यपि हुंबड़ जाति के श्वेताम्बर होने के कुछ उल्लेख अवश्य मिलते हैं पर प्राचीन काल से अब तक उस जाति पर दिगम्बरों का ही अधिक प्रभाव पाया जाता है।

गर्भा कुक्षि से वि० सं० ११३२ में शुभ लक्षण सूचित एक बालक (हमारे चरित्र नायक) ने जन्म लिया। जो क्रमशः द्वितीया के चन्द्रवत् वृद्धि को प्राप्त होकर विद्याध्ययन करने लगा।

एक समय सुविहित मार्ग प्रकाशक श्री जिनेश्वरसूरिजी [1] के विद्वान शिष्य श्रीमद् धर्मदेव उपाध्याय [2] की आज्ञानुवर्तिनी विदुषी आर्याएँ उग्र विहार करतीं हुईं वहां पधारीं। उन्होंने धर्म का विशेष लाभ देखकर चतुर्मास भी वहीं किया। धर्म-परायणा वाहड़ देवी अपने पुत्र रत्न के साथ व्याख्यान श्रवणादि के लिए उनके पास निरन्तर आया करती थी। आर्याएँ उस तेजस्वी बालक के शुभ लक्षणों को देखकर चकित रह गयीं

१ ये श्री वर्द्धमानसूरिजी के शिष्य थे। आप सुविहित मार्ग के प्रचार में सर्वाग्रणी थे। आपने ही पाटण में गुर्जरेश्वर दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासियों को शास्त्रार्थ में जीतकर सुविहित मार्ग का प्रचार किया था। आपके रचित कथाकोष, लीलावती, पञ्चलिङ्गी प्रकरण, अष्टकवृत्ति, षट्स्थान, प्रमालक्ष्म सवृत्ति, चैत्यवन्दनक आदि ग्रन्थ हैं, जिनमें लीलावती अनुपलब्ध है। इसका सार (जिनरत्नसूरिजी कृत) जैसलमेर भंडार में पाया जाता है।

२ गणधर सार्धशतक बृहद्वृत्ति के अनुसार आप श्री जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य थे, सहदेव गणि इनके भ्राता थे और हरिसिंह, सहदेव गणि (दोनों भाई) एवं सोमचन्द्रजी इनके शिष्य थे। गणधरसार्धशतक की गा० ७८ में श्री जिनदत्तसूरिजी ने स्वयं इन्हें अपना धर्मगुरु सम्बोधित किया है। यति नेमिचन्द्रजी के श्री जिनदत्तसूरि चरित्र ग्रन्थ में इनका नाम धर्मचन्द्र गणि लिखा है, जो ठीक नहीं है।

और माता एवं पुत्र को विशेष रूप से धर्मोपदेश देने लगीं। वाहड़-देवी भी उनके उपदेशों से धर्म कार्यों में अधिकाधिक प्रयत्नशील रहने लगी। वह साध्वियों की परम भक्त एवं आज्ञानुयायिनी हो गई और बालक का हृदय भी धर्म श्रवण करते हुए वैराग्य से परिपूर्ण हो गया।

एक दिन अवसर देखकर साध्वीजीने वाहड़ देवी से कहा—"तुम्हारा पुत्र विशिष्ट लक्षणों से युक्त है, यदि तुम इसे हमारे गुरू महाराज को समर्पण कर दो तो धर्म की महान् उन्नति होने के साथ साथ तुम्हें भी बड़ा लाभ होगा !" धर्मिष्ठा वाहड़ देवी ने उनके हित वचन को सादर स्वीकार कर लिया। माता की स्वीकृति प्राप्त कर आर्याओंने उपाध्याय श्री धर्मदेवजी के समीप संवाद भेजा। चतुर्मास के अनन्तर उपाध्याय जी भी धोलका पधारे। बालक के शुभ लक्षणों को देख कर उन्होंने भी यह निश्चय कर लिया कि यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है, अपितु शासन प्रभावक महापुरुष होनेवाला है। उन्होंने वाहड़ देवी से बालक को दीक्षित करने के सम्बन्ध में अभिप्राय पूछा। वाहड़ देवी ने बहुत हर्षित होकर कहा—"मेरे लिए इससे अधिक और सौभाग्य की बात हो ही क्या सकती है ? उस माता का जीवन सफल है, जिसका पुत्र धर्म के उद्धार एवं शासन प्रभावनार्थ अपना जीवन अर्पण कर दे ! यह चारित्र (दीक्षा) लेना चाहता है अतः आप प्रसन्नता से इसे दीक्षित कर इसका और मेरा निस्तार करें, मैं अपने को पूर्ण कृतकृत्य और भाग्य-

नाम समझूंगी कि मेरा पुत्र एक महान् धर्म प्रचारक और जगदुपकारक होगा" उपाध्यायजी ने पूछा "यह कै वष का है ?" उत्तर में बाहड़ देवी ने निवेदन किया—"इसका जन्म सं० ११३२ में हुआ है। उपाध्यायजीने ६ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर सं० ११४१ के शुभ मुहूर्त्त में बालक को दीक्षित किया और उन नवदीक्षित मुनि का नाम 'सोमचन्द्र'[1] रखा गया।

उपाध्यायजीने सोमचन्द्र मुनि को साध्वाचार के क्रिया-कलाप सिखाने के लिए श्री सर्वदेव[2] गणि को आदेश दिया। नवदीक्षित मुनिने श्रावक योग्य सूत्रादि तो पहले घर पर ही पढ़ लिये थे अब गणिजी के तत्त्वावधान में साधु प्रतिक्रमणादि का पठन प्रारम्भ हो गया।

बाल्य प्रतिभा

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" उक्त्यानुसार हमारे चरित्र नायक ने ६ वर्ष की उम्र में ही अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय देकर सब को चमत्कृत कर दिया था।

१ धनपतिसिंहजी भणसाली लिखित जिनदत्तसूरि चरित्र में दीक्षा नाम प्रबोधचन्द्र लिखा है। पर वह ठीक नहीं है।

२ वे श्री धर्मदेव उपाध्याय के शिष्य और हरिसिंहाचार्य के भ्राता थे। गणधर सार्धशतक वृहद्वृत्ति में लिखा है कि—"अभी तक इनका स्तूप स्तम्भ तीर्थ वेलाकुल के निकटवर्ती शाखीस्थल ग्राम के क्षेत्र में चमत्कारी होने के कारण मिथ्यादृष्टियों से भी सुरक्षित एवं पूज्यमान है।

बात यह हुई कि जब आप सर्वदेव गणि के साथ बहिर्भूमि पधारे, बाल्य वय के कारण उन्होंने चने के खेत में लगे हुए पौधे को तोड़ा लिया। यह देख कर गणिजीने शिक्षा के निमित्त उनसे रजोहरण एवं मुखवस्त्रिका लेकर कहा—"व्रती होकर भी पौधा तोड़ते हो तो अपने घर चले जाओ!" सोमचंद्रने क्षमायाचना करते हुए तत्काल उत्पन्न सुविमल प्रतिभा से उत्तर दिया कि प्रभो! आप मेरी चोटी जो पहले मेरे मस्तक पर थी, कृपया दे दीजिए!" पर गणिजी चोटी कहां से लाते? वे चकित होकर विचार करने लगे, अहो! इस छोटे से बालक का उत्तर भी कैसा प्रतिभासंपन्न है, इसका प्रत्युत्तर भी क्या दिया जाय!" जब यह बात धर्मदेवोपाध्याय जी के पास पहुंची तो उनके भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने सोचा कि अवश्य ही यह मुनि बहुत योग्य होनेवाला है।

विद्याध्ययन

वहां से ग्रामानुग्राम विचरते हुए सोमचन्द्र मुनि लक्षण पंजिकादि [1] शास्त्र पठनार्थ पत्तन (पाटण) पधारे। एक बार

१ हेमचन्द्रसूरिजी पंजिका शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं— "टीका निरन्तर व्याख्या पंजिका पद भंजिका" टीका—सुगमनां विषमाणां च निरन्तर व्याख्या यस्यां सा टीका विषमाण्येव पदानि भनक्ति पद भंजिका" लक्षण पंजिका अर्थात् सटिप्पण व्याकरण शास्त्र।

आप भावड़ाचार्य की धर्मशाला में पञ्जिका पठनार्थ जा रहे थे, रास्ते में एक उद्धत व्यक्तिने कहा कि "हे श्वेताम्बर ! कवली[1] (कपलिका) रखने का क्या प्रयोजन है ?" उत्तर में आपने कहा "तुम्हें निरुत्तर करने और अपनी शोभा बढ़ाने के लिए" ऐसा सुन कर वह निरुत्तर हो कर चला गया। सोमचन्द्र मुनि धर्मशाला पधारे। वहां अनेक अधिकारियों के पुत्र भी पढ़ते थे, वे भी पढ़ने लगे।

एक दिन परीक्षार्थ आचार्य ने आपसे पूछा—हे सोमचन्द्र ! "न विद्यते वकारो यत्र स नवकारः इति यथार्थ नाम ?" (अर्थात् जिसमें वकार नहीं उसे नवकार कहते हैं, क्या यह ठीक है ?) बुद्धिशाली सोमचन्द्रने तत्काल उत्तर दिया कि "नवकरणं नवकार इति व्युत्पत्ति कार्या (नव करणवाला नवकार होता है) वह व्युत्पत्ति संगत है। ऐसा सुनकर आचार्य ने विस्मित होकर सोचा इसका उत्तर बहुत ठीक है।

एक दिन लोच (केशलुंचन) करने के कारण सोमचन्द्र पठनार्थ न गये। वहां पढ़ाने की यह व्यवस्था थी कि यदि एक भी विद्यार्थी अविद्यमान होता तो आचार्य व्याख्यान—वाचना नहीं देते थे। नियमानुसार आचार्य के व्याख्यान न

---

१ पुस्तक सुरक्षित रखने के लिए लपेटने के एक विशेष प्रकार के वेष्टन को कवली कहते हैं। उक्त कथन उसमें रहे हुए ग्रन्थ को उद्देश्य करके कहा गया प्रतीत होता है।

देने पर अधिकारियों के पुत्रों ने गर्व के साथ कहा—आचार्य महाराज! हमने सोमचन्द्र के स्थान पर यह पत्थर रखा है, आप व्याख्यान दीजिए। उनके अनुरोध से आचार्य श्री ने व्याख्यान दिया। दूसरे दिन सोमचन्द्रजीने सहपाठियों से पूछा, क्या मेरी अविद्यमानता में भी कल तुम्हें वाचना दी गई थी ?" उन्होंने कहा हाँ! हमने तुम्हारे स्थान पर पाषाण रख दिया था"। सोमचन्द्रजीने कहा "पाषाण कौन है यह अभी मालूम पड़ जायगा। जितनी पञ्जिका पढ़ाई गई है, पूछने पर जो यथार्थ व्याख्या न कर सकेगा वही पाषाण समझा जायगा!" ऐसा सुनकर आचार्य ने कहा—"सोमचन्द्र! मैं तुम्हारे सद्गुणों से भली भाँति परिचित हूं पर क्या करूँ इन लोगों की प्रेरणा से व्याख्यान देना पड़ा, इस प्रकार मेधावी सोमचन्द्रने अपनी कुशाग्र बुद्धि की छाप आचार्य और सहपाठियों पर अच्छी तरह जमा ली। आप श्री ने सात वर्ष पर्यन्त पाटणमें रह कर विद्याध्ययन किया एवं वादियों को परास्त कर ख्याति प्राप्त की।

आपकी विद्वता की ख्याति सर्वत्र व्याप्त हो गई। आपश्री को बड़ी दीक्षा आचार्य श्री अशोकचन्द्रजी[१] के कर-

---

१ ये जिनेश्वरसूरिजी के शिष्य श्री सहदेवगणि के शिष्य थे। श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने इन्हें विशेष रूप से पढ़ा कर आचार्य पद दिया था। इन्होंने प्रसन्नचन्द्र, हरिसिंह और देवभद्र को आचार्य पद दिया था।

कमलों से हुई थी। श्रीहरिसिंहाचार्यजी[१] ने आपको सकल सिद्धान्तों की वाचना दे कर मन्त्र पुस्तकादि के साथ साथ जिस कवली से वे स्वयं पढे थे, वह कवली भी प्रसन्न होकर आप को दे दी थी। श्री देवभद्राचार्यजी[२] ने जिस

इनके शिष्य उदयचन्द्र थे, जिनके द्वारा सं० ११५४ में लिखाई हुई ओघ-निर्युक्ति की प्रति पाटण के भण्डार में विद्यमान है। श्री अशोकचन्द्राचार्य जीके रचित उत्तराध्ययनवृत्ति का उल्लेख प्रत्येकबुद्धचरित्र की प्रशस्ति में इस प्रकार है:—"यच्छिष्या:षड्तराध्ययन सद्व्याख्या मशोकेन्दुरा" ××

"स्वपूर्वज श्रीमदशोकचन्द्र श्रीनेमिचन्द्रादिम सूत्रधार।
दृष्टोत्तराध्याय विवृत्ति सूत्रानुसार तत्त्वार्वेति संघटय्य: ॥ ३० ॥"

इस वृत्ति का अभीतक कहीं पता नहीं है अतः साहित्य प्रेमियों को इसके अन्वेषण की ओर ध्यान देना चाहिये।

१ ये धर्मदेवोपाध्यायजी के शिष्य और सर्वदेव गणि के भाई थे। सोमचन्द्रजी पर इनकी पूर्ण कृपा थी। सूरि पद प्राप्ति के बाद विहार किधर करना चाहिए? यह निर्णय करने के लिये जिनदत्तसूरिजी के ३ उपवास करने पर इन्होंने हो स्वर्ग से प्रत्यक्ष होकर मरूस्थलादि की ओर विहार करने का निर्देश किया था। गणधर सार्धशतक मूल गाथा ७९ में श्री जिन-दत्त सूरिजो ने इन्हें गुरु (विद्या गुरु) रूप से स्मरण किया है।

२ आप उपाध्याय श्रीसुमति गणिके शिष्य थे। इनका दीक्षा नाम गुणचन्द्र गणि था। श्रीजिनवल्लभ सूरिजी कृत चित्रकूट प्रशस्ति के अनुसार इन्हें श्रीअभयदेव सूरिजो ने स्वयं विद्याध्ययन कराया था। श्री प्रसन्नचन्द्र

काष्ठोत्कीर्ण (कटाक्षरण) द्वारा पट्टिका पर महावीर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्र आदि ४ कथा शास्त्र लिखे थे, उसे सोमचन्द्र-जीको दे दिया था। इस प्रकार सोमचन्द्र मुनि सिद्धान्तादि

सूरिजी के निर्देशानुसार ही इन्होंने जिनवल्लभ गणि को श्री अभयदेवसूरिजी के पट्ट पर स्थापित किया था। श्रीजिनदत्तसूरिजी की पदस्थापना भी इन्हीं के द्वारा हुई थी। जिसका वर्णन आगे के प्रकरण में किया जायगा। ये अपने समय के प्रतिभाशाली विद्वान और गच्छ के प्रभावशाली आचार्य थे। इनके बनाये हुए चार ग्रन्थों का उल्लेख ऊपर आया है, जिनमें से कथाकोश की प्रशस्ति में लिखा है कि संघ धुरन्धर सेठ सिद्धवीर के कथन से महावीर चरित्र रचा। दूसरा ग्रन्थ संवेगरङ्गशाला नामक आराधना शास्त्र बनाया। तीसरे ग्रन्थ कथाकोश की रचना सं० ११५८ में भरौंच में हुई थी। इसके पश्चात् चौथा ग्रन्थ पार्श्वनाथ चरित्र सं० ११६८ में भरुच के आमदत्त के मन्दिर (घर) में बनाया। इनमें से पहला ग्रन्थ सं० ११३९ ज्येष्ठ सुदि ३ को अपने आचार्य पद से पूर्व रचा था। दूसरे ग्रन्थ जिनचन्द्र सूरि कृत संवेगरङ्गशाला का तो आपने प्रतिसंस्कार (सं० ११२५) ही किया था। तीसरा ग्रन्थ विद्वान मुनिराज श्री पुण्यविजयजी महाराज ने सम्पादन कर श्री आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित किया है। उनके कथनानुसार यह ग्रन्थ जैन कथा साहित्य में अपूर्व है। इसका गुजराती अनुवाद भी उक्त सभा प्रकाशित करने वाली है। चतुर्थ ग्रन्थ की प्रतियां जैसलमेर, बीकानेर आदि के ज्ञानभण्डारों में उपलब्ध हैं। पिछले दोनों ग्रन्थों के प्रथमादर्श, अमलचन्द्र गणि के लिखने का उनकी प्रशस्तियों में उल्लेख है। मुनि पुण्यविजयजी ने कथाकोश के साथ आपके १ प्रमाणः

का ज्ञान और प्रकाण्ड पाण्डित्य प्राप्त कर श्रावकों को आनन्द देते हुए ग्रामानुग्राम सर्वत्र विचरने लगे।

* *

*

प्रकाश (अपूर्ण), अनन्तनाथ स्तोत्र, ३ स्तम्भन पार्श्वनाथ स्तोत्र, ४ वीत राग स्तव को भी प्रकाशित किया है। आपके शिष्य देवानन्द सूरि शिष्य देवप्रभ शिष्य विबुधप्रभ शिष्य पद्मप्रभ रचित मुनिसुव्रत चरित्र सं० १२९४ का उपलब्ध है। इसके पश्चात् आपकी शिष्य परम्परा कहां तक चली, यह अज्ञात है।

मुनि श्री पुण्यविजयजी कथारत्न कोश की प्रस्तावना में गुणचन्द्र गणिजी (देवभद्र सूरिजी) को आचार्य पदारूढ़ प्रसन्नचन्द्र सूरिजी ने किया होगा, लिखा है।

दूसरा प्रकरण

सूरि पद व अर्णोराज समागम

श्रीमद् अभयदेव[1] सूरिजी के पट्टधर श्री जिनवल्लभ सूरिजी संवत् ११६७ मिती कार्तिक कृष्णा १२ की रात्रि को चतुर्थ प्रहर में चौथे स्वर्ग सिधारे। गच्छनायक के विरह सम्वाद से श्री देवभद्राचार्यजीके चित्तमें बड़ा सन्ताप

---

१ नवाङ्गी वृत्तिकार के रूप में आपकी सर्वत्र प्रसिद्धि है। आप बड़े उच्चकोटि के विद्वान्, सर्वमान्य गीतार्थ और समर्थ टीकाकार थे। प्रभावक चरित्र के अनुसार आप धारा नगरी के श्रेष्ठि धनदत्त के पुत्र थे और आपका नाम अभयकुमार था। श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने आपको दीक्षित कर योग्यता प्राप्त होने पर श्री वर्द्धमानसूरिजी की आज्ञा से सं० १०८८ में आचार्य पद दिया था। आप उग्र विहार करते हुए शंभाणक पधारे, वहां आपका शरीर रक्तविकारादि रोग से आक्रान्त हो गया। ज्यों ज्यों औषधोपचार हुआ, रोग और भी बढ़ने लगा। अंत में शासन देवी के कथनानुसार जयतिहुअणबत्तीसी की रचना कर स्तम्भनपार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा प्रकट करने से रोग उपशान्त हुआ। इसके पश्चात् सं० ११२० और ११२८ के लगभग नव अङ्गों पर टीका बनाई। सं ११३५ या सं० ११३९ में आप कर्पटवाणिज्य (प्रभावकचरित्र के अनुसार पाटण) में स्वर्गवासी हुए।

हुआ कि "अहा ! श्रीमद् अभयदेव सूरिजीके पट्ट पर समर्थ विद्वानरत्न श्रीजिनवल्लभ सूरिजी[1] को सुशोभित कर मैं कृत कार्य

प्रभावक चरित्र में रोगोत्पत्ति, धवलका में नव अङ्गों की टोका करने के पश्चात् लिखो है पर उससे प्राचीन गणधर सार्धशतक बृहद्वृत्ति में रोगोत्पत्ति शंभाणक और वृत्ति रचना उसके पश्चात् लिखा है वही ठीक प्रतीत होता है । आपके रचित उपलब्ध साहित्य की सूची इस प्रकार है:—

नं० १ से ९ स्थानाङ्ग, समवायांग, भगवती, ज्ञाता, उपासकदसांग, अन्तगडदसांग, अनुत्तरोववाई, प्रश्नव्याकरण और विपाकसूत्र पर वृत्ति । नं० १० उववाई वृत्ति, ११ पंचाशकवृत्ति, १२ षट्स्थान भाष्य, (गा० १७३), १३ प्रज्ञापना तृतीय पद संग्रहणी (पन्न निग्रन्थी), १४ आगम अष्टोत्तरी, १५ नवपद प्रकरण भाष्य, १६ सत्तरी भाष्य (गा० १९२), १७ बृहद्-वन्दनक भाष्य, १८ आराधना कुलक, १९ साहम्मीवच्छल कुलक, २० पुद्गल षट्त्रिंशिका, २१ निगोद षट्त्रिंशिका, २२ वीर स्तोत्र गा० २२ (अइज्जा समणे), २३ वस्तु स्तवन (गा० १६), २४ विज्ञप्ति (गा० १६), २५ पार्श्व विज्ञप्ति (गा० २२), २६ जयतिहुअण २७ स्तम्भन, २८ नेमि, २९।३० ऋषभ स्तव गाथा ८, ८ के अनुपलब्ध ।

१ आप पहले कूर्चपुरीय गच्छ के आशिका निवासी चैत्यवासी जिनेश्वराचार्य के शिष्य थे। श्रीमद् अभयदेवसूरिजी के पास आगमों का अध्ययन करने पर आपने चैत्यवास का परित्याग किया और उनसे उपसम्पदा ग्रहण कर ली। आप एक महान् कवि, जैन सिद्धान्त पारंगत गीतार्थ, ज्योतिष शास्त्र निष्णात और सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न प्रकाण्ड

हुआ था, किन्तु दुर्दैव ने ऐसे पुरुष रत्न को भी हर लिया!" इसप्रकार चिन्ता करते हुए विचार उत्पन्न हुआ कि चिन्ता करने से क्या होगा? श्रीजिनवल्लभसूरिजी के पद पर किसी प्रभावक पुरुष को स्थापित करना परमावश्यक है।

विद्वान थे। चत्यवास के विरुद्ध आपका आक्रमण बड़ा ही शक्ति सम्पन्न था। स्थान स्थान पर आपने विधिचैत्य-जिनालयों में सुविहित विधियों का प्रचार किया एवं नियमों को शिलापट्ट पर प्रशस्ति के रूप में उत्कीर्ण करवाये। संघपट्टक ग्रन्थ आपके चैत्यवास विरोध का सफल परिचायक है। आपके द्वादशकुलक ग्रन्थ द्वारा वागड़ देश में जैनधर्म का जबरदस्त प्रचार हुआ, द्वादशकुलकवृत्ति के अनुसार इससे सारे वागड़ देश की जनता प्रतिबोध पाई थी; सोमकुंजर की पट्टावलि के अनुसार वागड़ देश में आपके द्वारा २० हजार व्यक्तियों ने जैन धर्म का प्रतिबोध पाया था। धारानगरी के राजा नरवर्म को आपने अपनी विद्वत् प्रतिभा से चमत्कृत किया था। आपने चित्तौड़, नागपुर (नागौर), नरवर आदि में विधिचैत्यों की प्रतिष्ठा की थी। आपके ज्ञान ध्यान से प्रभावित हो कर चित्तौड़ में चामुण्डा देवी आपकी भक्त हो गई। चित्तौड़ में ही श्री देवभद्राचार्यजी ने आप श्री को सं० ११६७ आषाढ़ सुदि ६ के दिन आचार्य पद देकर श्रीमद् अभयदेव सूरिजी के पट्ट पर स्थापित किये थे। सं० ११६७ के मिती कार्तिक कृष्णा १२ को रात्रि के चतुर्थ प्रहर में आप समाधि मरण द्वारा चतुर्थ देवलोक को प्राप्त हुए।

कई लोग इनके अभयदेव सूरिजी के शिष्य होने में शंका करते हैं,

आचार्य पद के योग्य व्यक्ति के सम्बन्ध में विचार करते हुए श्रीजिनवल्लभ सूरिजी के संकेतानुसार श्रीदेवभद्र सूरिजी के

पर वह ठीक नहीं है क्योंकि सं० ११७१ में अन्य गच्छीय धनेश्वरसूरि कृत सार्द्धशतक वृत्ति में इन्हें अभयदेवसूरि के शिष्य लिखा है। आपके रचित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है:—२ सूक्ष्मार्थ सिद्धान्त विचार सार (सार्द्ध शतक गा० १८९), २ आगमिक वस्तु विचार सार (षडशीति गा० ९२) ३ पिण्ड विशुद्ध प्रकरण गा० १०३, ४ पौषध विधिप्रकरण गा० १५०,५ *प्रतिक्रमण समाचारी गा० ४०*,६ *द्वादशकुलक ग्रन्थ ग्र० ३००*, ७ संघपट्टक गा० ४०, ८ धर्मशिक्षा, ९ प्रश्नोत्तर शतक, १० शृङ्गार शतक (अप्राप्त), ११ स्वप्नाष्टकविचार , १२ अष्टसप्तति (चित्रकूट प्रशस्ति—अप्राप्त), १३ से १७ आदि, शान्ति, पार्श्व, नेमि, वीरस्तव, १८ · भवारिवारण स्त्रोत्र, १९ लघु अजित शांति, २० पञ्च कल्याणक, २१ महा भक्तिगर्भा सर्वविज्ञप्तिका, २२ वीतराग स्तुति गा० १-, २३ महावीर स्तोत्र (गा० १५), २४ कल्याणक स्तवन, २५ नवकार फल स्त० (गा० १३), २६ पार्श्वस्तोत्र (गा० ३३), २७ प्रथम जिन स्तवन (गा० ३३) २८ पञ्च कल्याणक स्तोत्र (गा० १२), २९ सर्वजिन स्तोत्र (गा० २३), ३० पार्श्व स्तोत्र (गा० ९), ३१ सर्वजिन पञ्चकल्याणक स्तोत्र (गा० ८) ३२ सर्वजीव शरीरावगाहना स्त० (गा० ८ , ३३ नन्दीश्वर स्तोत्र (गा० २५), ३४ श्रावक व्रत कुलक (गा० २८), ३५ क्षुद्रोपद्रवहर पार्श्व स्तवन (गा० २२,, ३६ आप्त मीमांसा (इसका केवल १ श्लोक तरुणप्रभसूरि कृत षडावश्यक बालावबोध में है)।

स्थान में सामचन्द्र मुनि आये। उन्हें इस पद के सर्वथा योग्य समझ कर सर्वसम्मति से एक पत्र भेजा कि "श्रीजिनवल्लभ सूरिजी के पद स्थापना के समय आप आमन्त्रित किये जाने पर भी पहुंच न सके थे पर इस बार बिलम्ब न कर शीघ्र ही चित्तौड़ पहुंचें, वहां श्री जिनवल्लभ सूरिजी के पट्ट पर नवीन आचार्य स्थापन किये जायेंगे।" देवभद्रसूरिजी के सम्वाद को पाकर सोमचन्द्र मुनि शीघ्र ही चित्तौड़ पधारे। वहां देवभद्राचार्य भी आ पहुंचे। श्रीजिनवल्लभसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित साधारण[1] साह के बनवाये हुए श्री महावीर

१ ये चित्तौड़ निवासी थे, जब जिनवल्लभगणि वहां आये तो इन्होंने उनके उपदेशों से प्रभावित होकर उनके पास व्रत ग्रहण करना निश्चय किया और बीश हजार रुपये का परिग्रह परिमाण व्रत देने के लिए गुरु महाराज से निवेदन किया। गुरु महाराज ने अपने विमल ज्ञान से इनका भावी भाग्योदय ज्ञात कर परिग्रह परिमाण बढ़ाने का संकेत किया। साधारण सेठ ने कहा—इस समय मेरी स्थिति ५०००) की भी नहीं है अतः २००००) का व्रत दिला दीजिये? पर गुरु महाराज ने बतलाया कि पुरुष का भाग्य पलटते देर नहीं लगती, तब इन्होंने अपना अभ्युत्थान जान कर १ लाख रुपये का परिग्रह परिमाण व्रत लिया। अपने भाग्य और गुरु महाराज की कृपा से इन्हें उत्तरोत्तर सफलता मिलने लगी और अल्प काल में ये चित्तौड़ के प्रसिद्ध धनवान् और राज्यमान्य श्रेष्ठी हो गये। इन्होंने चित्तौड़ में श्री महावीर स्वामी का मन्दिर निर्माण करवाके श्रीजिनवल्लभसूरिजी के कर कमलों से प्रतिष्ठा करवाई थी।

स्वामी के विधिचैत्य में पदस्थापना करने का निश्चय किया गया।

श्रीदेवभद्राचार्यजी ने अपने विचारे हुए मुहुर्त्त के सम्बन्ध में एकान्त में पं० सोमचंद्रजी से कहा कि—"तुम्हारी पदस्थापना का मुहूर्त्त अमुक दिन है" उन्होंने कहा—"आपने विचार किया वह ठीक है पर यदि इस लग्न में पद स्थापना होगी तो मेरी चिरायु नहीं होगी! यदि इसके ६ दिन पश्चात् शनिवार को हो तो जैन शासन की उन्नति कर सकूंगा'।" देवभद्राचार्यजी ने

१ सतरहवीं शती की पट्टावलियों में लिखा है कि जब श्रीजिनदत्त सूरिजी सूरिपद प्राप्ति के लिये चित्तौड़ आ रहे थे तो रास्ते में सारङ्गपुर में कंबला गच्छीय उपाध्याय कुमारपालने अपने अंतिम समय में इन्हे आराधना कराने का अनुरोध किया, आप श्री ने उन्हे भली भांति आराधना करवा दी। समाधिमरण द्वारा वे देव हुए और इन (चरित्र नायक) के उपकार को स्मरण कर प्रत्यक्ष हो कर कहा कि "पद स्थापगा के लिये ३ मुहुर्त्त निकाले गये है, जिनमें से पहले में पद स्थापना होने से अल्पायु, द्वितीय में गच्छ भेद और तृतीय में धर्म प्रभावना का योग है पर यह बात आप किसी से मत कहना! इन्होंने (सोमचन्द्रजी) चित्तौड़ पधार कर पहला मुहुर्त्त कायोत्सर्ग अवस्थित रह कर बिता दिया। दूसरे मुहुर्त्त के समय भी कायोत्सर्ग प्रारम्भ किया जनता ने आतुरता वश अनुरोध करके द्वितीत मुहुर्त्त में ही इनको आचार्य पद देकर श्रीजिनवल्लभ सूरीजी के पट्ट पर स्थापित कर दिया।

कहा ठीक है, वह मुहूर्त भी कोई दूर नहीं है अतः वैसा ही किया जायगा।"

निर्दिष्ट शुभ मुहूर्त संवत् ११६९ मिति वैशाख[1] कृष्णा ६ शनिवार के संध्या समय बड़े महोत्सव पूर्वक साधारण श्रेष्ठी के बनवाये हुए महावीर स्वामी के विधिचैत्य में श्री जिनवल्लभ-सूरिजी के पद पर श्री देवभद्राचार्यजी ने सोमचन्द्रजी को स्थापित कर उनका नाम श्रीजिनदत्तसूरि प्रसिद्ध किया। नाना प्रकार के वाजिंत्र बजते हुए बड़े समारोह के साथ सूरि-महाराज उपाश्रय पधारे। प्रतिक्रमणादि करने के पश्चात् श्री देवभद्राचार्यजी ने वन्दना करके सूरिजी से कहा कि धर्म-देशना दीजिये। तब पूज्यश्री ने संघ के समक्ष सिद्धान्तीय

प्राकृतप्रबन्धावली के कथनानुसार अनशन आराधना कच्छोलियाचार्य (कूर्चपुरीय) श्रीजिनेश्वरसूरिजी को करवाई थी। उन्होंने पहले मुहूर्त में पट्ट स्थापना होने पर अल्पायु और दूसरे मुहूर्त में शासन प्रभावक होने का कहा था। दो मुहूर्त और उसके फल की पुष्टि गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति से होने के कारण हमारे ख्याल से ३ मुहूर्त वाला प्रवाद रूद्रपल्लीय गच्छ भेद होने के कारण प्रचलित हुआ ज्ञात होता है। पट्टावलियों में लिखा है कि पदस्थापना के बाद अकस्मात् चोलपट्टा फट जाने पर सूरिजी ने उसे गच्छभेद होने का सूचक बतलाया था।

१ श्रीकेसरसिंहजी गौडवंशी ने श्रीजिनदत्त सूरि चरित्र में जेठ वदि ६ लिखा है पर वह ठीक नहीं है।

उदाहरणों के साथ हृदयहारी और प्रमोदकारी धर्म-देशना दी। देशना सुनकर सब लोग बड़े ही प्रसन्न हुए और देवभद्राचार्यजी की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे कि धन्य है इन्हें, जिन्होंने गच्छ में गौर वर्ण वाले अनेक रूपवान साधुओं को छोड़कर इन ह्रस्व देह वाले श्यामवर्ण[1] के पात्ररत्न की परीक्षा कर श्री जिनवल्लभसूरिजी के पट्ट को दैदीप्यमान कर दिया। रत्नों की परीक्षा अनुभवी जौहरी ही कर सकते हैं, हम स्थूल बुद्धि वाले क्या जानें! वस्तुतः सिंह के स्थान पर सिंह ही शोभा देते हैं। श्री जिनदत्तसूरिजी बड़े ही विद्वान, प्रतिभासम्पन्न, निर्भय और श्री जिनवल्लभसूरिजी के पद के सर्वथा योग्य ज्ञात होते हैं।

औदार्य्य

एक दिन जिनशेखर[2] मुनि के साध्वाचार से विपरीत

---

१ द्व्याश्रयकाव्य वृत्ति और प्रत्येकबुद्धचरित्र की प्रशस्ति से भी इसका समर्थन होता है।

२ जब श्रीजिनवल्लभगणि को उनके गुरु श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने श्रीमद् अभयदेवसूरिजी के पास सिद्धान्त वाचनादि के लिये भेजा था उस समय उनके साथ वैयावच्च करने के लिए जिनशेखर मुनि को भेजनेका उल्लेख गणधर सार्द्धशतकबृहद्वृत्ति के अन्तर्गत जिनवल्लभसूरि चरित्र में है। इससे जिनवल्लभसूरिजी के साथ जिनशेखरमुनि का प्राचीन संबन्ध प्रमाणित होता है। इन्हीं जिनशेखर उपाध्याय से खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीयशाखा

कलहादि अयुक्त कार्य करने से श्री देवभद्राचार्यजी ने उन्हें गच्छ से बहिष्कृत कर दिया। तब वे जिसओर श्री जिनदत्तसूरिजी बहिर्भूमि गये थे, उस मार्ग में जाकर खड़े हो गये और पूज्यश्री के चरणों में गिर कर दीनभाव से कहने लगे—"प्रभो! मेरे अपराध को एक बार क्षमा कीजिये! भविष्य में फिर ऐसा कदापि नहीं करूंगा।" कृपानिधान श्रीजिनदत्तसूरिजी ने यह सुन कर उन्हें पुनः गच्छ में सम्मिलित कर लिया। यह बात श्रीदेवभद्राचार्यजी को अखरी और उन्होंने सूरिजी से कहा "यह कार्य ठीक नहीं हुआ, यह सुखप्रद नहीं होगा!" सूरिजी ने कहा—" श्रीजिनवल्लभसूरिजी की सेवा में ये बहुत वर्षों तक रहे हैं अतः जहां तक हो सके निभाना ही ठीक है।

विहार

एक बार सूरिजी से श्रीदेवभद्राचार्यजी ने श्रीपत्तन के

की प्रसिद्धि हुई थी। ये रुद्रपल्ली के निवासी थे। उनके कुटुम्बियों के धर्मकार्यों का आगे उल्लेख किया जायगा। रुद्रपल्ली स्थान के नाम से इनकी परम्परा रुद्रपल्लीयगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। इस शाखा के १ अभयदेव सूरि (सं० १२७८ में जयन्तविजय काव्य रचयिता), २ प्रभानंदसूरि, ३ सोम-तिलक सूरि, ४ देवेन्द्र सूरि, ५ पृथ्वीचन्द्र ६ लक्ष्मीचन्द्र ७ वर्द्धमानसूरि ८ श्री तिलक, १० गुणाकर सूरि, ११ कमलप्रभाचार्य, १२ आज्ञाचन्द्र की कृतियाँ उपलब्ध हैं। इस गच्छ (शाखा) की आचार्य परम्परा १६ वीं शती तक व यति परम्परा १७ वीं शती तक विद्यमान थी।

आसपास विचरनेके लिये विज्ञप्ति की। उनके विज्ञप्ति के अनुसार सूरिजी ने श्रीपत्तन की ओर विहार करने के विचार से देव गुरू के स्मरणार्थ तीन उपवास किये। आपके स्मरण से आकर्षित हो स्वर्गीय श्री हरिसिंहाचार्यजी प्रत्यक्ष हुए। उन्होंने पूछा—मुझे स्मरण करने का क्या प्रयोजन है? सूरिजी ने कहा—मेरे किस ओर विहार करने से शासन का भावी उद्योत होने वाला है यह फरमावें, तब वे उन्हें मरूस्थलादि की ओर विचरने का संकेत कर अन्तर्धान हो गए।

इसी साल विक्रमपुर[१]—मारवाड़ के मेहर, भाखर, वासल भरतादि श्रावक व्यापार के निमित्त वहां आए। वे सूरिजी के दर्शन एवं वचन श्रवण कर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उनके परम भक्त श्रावक हो गए। भरत श्रावक तो पठनार्थ गुरुश्री के पास रहा, मेहर भाखरादि सब अपने देश लौट गये। वहां जाकर उन्होंने सूरिजी के विशुद्ध साध्वाचार की भूरि भूरि प्रशंसा की, जिसे सुनकर समस्त संघ ने सूरि महाराज को मारवाड़ पधारने की विनती की। सूरि महाराज ने वहां से मारवाड़ की ओर विहार कर दिया।

---

१ यह विक्रमपुर (वीकमपुर) अब भी इसी नाम से प्रसिद्ध फलौदी से ४० मील पर है। कई विद्वानों ने इसे बीकानेर लिखने की गल्ती की है पर बीकानेर सं० १५४५ में बसा था। विशेष जानने के लिये "मणिधारी जिनचन्द्रसूरि" देखना चहिए।

विशुद्ध प्ररूपणा

सूरिमहाराज ग्रामानुग्राम विचरते हुए क्रमशः नागपुर[१] (नागौर) पधारे। वहां श्रेष्ठिवर्य्य धनदेव[२] श्रावक निवास करता था। उसने सूरिजी के मुख से आयतन अनायतनादि विषयक विचारों को सुन कर निवेदन किया—"भगवन्! यदि आप एक बात मेरे कही हुई करें तो समस्त श्रावक आपके ही अनुयायी हो जांय!" सूरिजी ने जानते हुए भी पूछा—"धनदेव! वह क्या बात है?" उसने कहा—"यदि आप आयतन—अनायतन[३], विधि और अवधि विषय में मौन

---

१ श्री गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा के मतानुसार नागौर का दूसरा नाम अहिच्छत्रपुर भी है जिसे नागवंशी राजाओं ने बसाया था। प्राचीन काल में अहिछत्रपुर जांगल देश की राजधानी थी। नागौर परगने का प्रदेश सपादलक्ष (स्वालक) भी कहा जाता है। जैन ग्रन्थों में नागौर का सब से प्राचीन उल्लेख वि० सं० ९१३ का पाया जाता है। इस संवत् में कृष्णर्षि के शिष्य जयसिंहसूरि ने धर्मोपदेशमालावृत्ति यहां बनाई थी। नागौरी तपागच्छ और नागौरी लुंका गच्छ इसी नागौर से सम्बन्धित है।

२ इन्होंने श्रीजिनवल्लभसूरिजी के उपदेशामृत से नागपुर में श्री नेमिनाथजी का मन्दिर बनवा कर उनके हाथ से प्रतिष्ठा करवाई थी। इन के पुत्र पद्मानंद कवि अच्छे विद्वान थे, जिनके रचित वैराग्यशतक (पद्मानंद शतकम्) उपलब्ध है।

३ आयतन-अनायतन का स्पष्टीकरण करते हुए श्री जिनदत्तसूरिजी "चैत्यवंदन कुलक" में लिखते हैं :—

रहें" सूरिजी ने कहा—"तुम्हारा वचन मान्य किया जाय, या तीर्थङ्करों का ? सूत्रों में कथित आयतन विधि और अनायतन विधि को मैं अवश्य कहूंगा। उत्सूत्र भाषण से अनन्त संसार की वृद्धि होती है, अतः अनन्त संसार बढ़ा कर अनुयायियों की संख्या वृद्धि करना श्रेयस्कर नहीं है। चर्म रोग वाले के बहुतसी मक्खियां आकर चिपकती हैं

"आययणमनिस्सकडं, विहिचेइयमिह सिद्दा सिव करंतु।
उस्सग्ग ओववाया, पासत्थोसन्न सन्निकयं॥ ५॥"

अर्थात्—जिससे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रादि गुणों का लाभ हो और वहां साधु लोग रहकर जिनाज्ञा के विरुद्ध आशातना न करते हों उसे आयतन कहते हैं वह भी जातिपांति के ममत्व से रहित हो तो अनिश्राकृत कहा जाता है। और जिसमें जैनागमोक्त गीतार्थ गुरूपदेशित विधि आचरित की जाती हो उसे विधिचैत्य कहते हैं। उत्सर्ग से ऐसे ही चैत्यों में जाना उचित है। अपवाद से शिथिलाचारियों और उनके भक्तों के देख-रेख में हो पर जिनमें चैत्यवासी न रहते हों, उसमें भी आया जा सकता है।

मूलुत्तर गुण पडिसेविणोय, ते तत्थ संति वसहीसु।
तमणायणं सुत्ते · समत्तं हर फुड वुत्त॥

अर्थात्—साधुओं के पंच महाव्रतादि मूल गुण और पिण्डविशुद्धि आदि उत्तर गुणों के प्रतिकूल आचरण करने वाले द्रव्यलिंगी जिन वस्तियों (मंदिरों) में रहते हैं उन्हें सूत्रों में सम्यक्त्वनाशक और अनायतन कहा है।

परन्तु वे उसकी वेदना बढ़ाती ही हैं, इसी प्रकार उत्सूत्रभाषी के बहुत से अनुयायी हो जायं तो भी भव-परम्परा को बढ़ाने वाले ही हैं। ज्यादा परिवार होने से ही कोई सिद्धि नहीं होती, क्या शूकरी के बहुत सा परिवार होने पर भी उसका विष्टा में मुंह डालना क्या रूक जाता है?"

ये नग्न-सत्य वाक्य धनदेव को कटु प्रतीत हुए, पर इससे क्या? शास्त्रों में कहा है कि :—

रूसउ वा परो मा वा, विसं वा परियट्टउ।
भासियव्वा हिया भासा, सपक्ख गुण कारिया[1]॥ १ ॥

[रुष्यतु वा परो मा वा, विषं वा परिवर्त्ततास्।
भाषितव्या हिता भाषा, स्वपक्ष गुण कारिका॥ २ ॥]

अर्थात्—कोई राजी हो या नाराज हो, बात वही कहनी चाहिए जो आत्म हितकर हो।

सूरिजी के इस प्रकार की विशुद्ध प्ररूपणा से कई विवेकी श्रावक प्रतिबोध पाए। वे वहां से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए अजमेर पधारे। वहां ठकुर आशाधर, साहू रासल आदि भक्त श्रावक निवास करते थे। सूरिजी के पधारने से वे लोग बड़े आनन्दित हुए। सूरिजी प्रतिदिन देववन्दनार्थ वाहड़ कारित

---

१ श्रीअभयदेवसूरिजी के स्वधर्मीवात्सल्यकुलक की यह १३ वीं गाथा है।

देवगृह (जिनालय) में आया करते थे। एकबार उस चैत्य के आचार्य आये, वे दीक्षा पर्य्याय में छोटे होने पर भी सूरिजी के देववन्दनार्थ आने पर उन्हें गर्व से वन्दना व्यवहार नहीं करते थे। ठक्कुर आशाधर आदि भक्त श्रावकों को यह अनुचित व्यवहार बहुत अखरा। उन्होंने सूरिजीसे निवेदन किया— "यदि वहां जाने से आगमोक्त मर्य्यादा का भंग होता है तो फिर वहां जाने से लाभ ही क्या? इसके बाद श्रावक संघ ने महाराजा अर्णोराज[1] से देवमन्दिर के निमित्त उत्तम भूमि ग्रहण कर नया विधिचैत्यालय निर्माण कराने का निश्चित किया।

---

१ अर्णोराज—अजमेर के संस्थापक महाराजाधिराज अजयदेव और महारानी सोमल्ल देवी के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् ११७० से पूर्व हुआ। गद्दी पर सम्भवतः सम्वत् ११९० से पूर्व बैठे। इनके राज्याभिषेक के कुछ समय बाद तुरुष्कों ने अजमेर पर आक्रमण किया। अर्णोराज ने उनको हराया और युद्धस्थल पर आनासागर झील बनवाई, मालवा के राजा नरवर्मा को युद्ध में परास्त किया और उसके अनेक हाथी छीन लिये। इन्होंने वर्तमान बीकानेर के उत्तरी प्रदेश को हस्तगत किया, हरियाणा प्रान्त जीता और पञ्जाब के कुछ दक्षिणी भाग भी अधीन किए, श्रीहेमचन्द्र ने अर्णोराज को उदीच्यराट् की उपाधि सम्बोधित किया है।

अर्णोराज के दो रानियां थीं, एक मरुकोट (मरोट) के जोहिया राजा सिंहबल की बहिन सुधवा (जगदेव और वीसलदेव की माता) और दूसरी गुर्जराधिराज जयसिंह की पुत्री कांचन देवी (सोमेश्वर की माता)।

अजमेर के प्रमुख श्रावक एकत्र होकर महाराज अर्णोराज के पास गए और निवेदन किया—"स्वामी! हमारे अहोभाग्य से गुरुवर्य्य श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज का यहां शुभागमन हुआ है" अर्णोराज ने कहा—"बड़ी प्रसन्नता की बात है, मेरे योग्य कार्य हो सो कहो!" श्रावकों ने कहा—"देव मन्दिर आदि धर्मस्थान एवं श्रावकों को मकान बनाने के लिए उपयुक्त भूमि खण्ड बतलाइये!" प्रत्युत्तर में अर्णोराज ने कहा—"दक्षिण दिशा की ओर पर्वत के पास आप लोग देव मन्दिर आदि यथारूचि बनवा सकते हैं, गुरू महाराज के

कुमारपाल के गद्दी पर बैठते ही चाहड़ आदि गुर्जर सामान्तों के भड़काने से उन्होंने गुजरात पर आक्रमण किया। कई वर्षों के युद्ध के बाद अर्णोराज युद्ध (सं० १२०७) में परास्त हुआ। कुछ समय बाद सुधवा के ज्येष्ठ पुत्र जगदेव ने गद्दी के लालच से अर्णोराज की हत्या की। इनके सं० १२०७ तक विद्यमान होने के प्रमाण मिलते हैं।

अर्णोराज अपने समय के अत्यन्त प्रतापी राजा थे। शिवभक्त होते हुए भी वे जैन शासन का सम्मान करता थे। धर्मघोषसूरि ने उनके दरबार में दिगम्बर गुणचन्द्र को पराजित किया। परम भागवत देवबोध इनका सभासद था। आचार्य श्रीजिनदत्तसूरि का सम्मान भी उनके हृदय की विशालता और गुणग्राहकता का परिचायक है।

तीसरा प्रकरण

वागड़ देश में धर्म प्रचार और चैत्यवासियोंकी उपसम्पदा

वागड़[1] देश के श्रावक परमगुरु श्री जिनवल्लभसूरिजी के प्रतिबोधित परम धर्मानुरागी थे। वे अपनी ओर श्री जिन-

---

1 भारतवर्ष में वागड़ नामके कई प्रदेश हैं। जिनमें से ३ इस प्रकार हैं :—

1 डुंगरपुर, बांसवाड़ा। मेवाड़ का ५६ जिला भी आगे वागड़ में था में था। सुप्रसिद्ध केशरियाजी व बड़ौदा के जैन तीर्थ भी इसी मेवाड़ के वागड़ में ही है। इस वागड़ के जैन वस्ती और मन्दिर वाले कुछ स्थानों की सूची "जैन सत्य प्रकाश" वर्ष ३ अङ्क ७ में प्रकाशित हुई है।

२ कच्छ राज्य का एक हिस्सा।

३ बीकानेर राज्य से दिल्ली के मार्ग में हाँसी हिसारादि रेवाड़ी के आसपास तक का प्रदेश वागड़ कहलाता है। उपर्युक्त वागड़ जहां श्रीजिनवल्लभसूरिजी व श्रीजिनदत्तसूरिजी का विशेष प्रभाव था, यही वागड़ देश है।

जलप्राय और वाग्जड़ (जो वाक्पटु न हों) लोगों की वस्ती वाले प्रदेश को वागड़ कहते हैं।

वल्लभ सूरिजी के पट्टधर, सिद्धान्तविशारद, विधिमार्ग प्रचारक श्री जिनदत्तसूरिजी के पधारने का समाचार पा कर आह्लादित हुए और चरण-कमल वन्दनार्थ आये। पूज्यश्री का व्याख्यान श्रवण कर वे अपना अहोभाग्य मानने लगे एवं सूरिजी से अपने प्रश्नों का केवली के सदृश सदुत्तर पाकर अत्यन्त प्रमुदित हो किसीने सम्यक्त्व[1] व्रत किसीने देशविरति[2] किसीने सर्वविरति[3] धर्म स्वीकार किये। उस समय ५२ साध्वियें और बहुत से साधु दीक्षित हुए।

इसी समय सूरिजी ने जिनशेखर मुनि को उपाध्याय पद देकर कई साधुओं के साथ रुद्रपल्ली की ओर विहार करने का

---

१ तत्त्वज्ञान पर सच्ची श्रद्धा, कुगुरु, कुदेव, कुधर्म को त्याग कर सुगुरु, सुदेव, सुधर्म का ग्रहण व्यवहारे समकित है। वस्तु के स्वरूप की सच्ची प्रतीति, स्वानुभव, आत्मा के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान, पर पदार्थों से अनासक्ति को निश्चय समकित कहते हैं।

२ आंशिक त्याग—गृहस्थ जीवन में रहता हुआ व्यक्ति जितने अंश में त्याग कर सके। इसके अन्तर्गत श्रावक के १२ व्रत हैं जिनका विशेष स्वरूप धर्मबिन्दु आदि ग्रन्थों में देखना चाहिए।

३ सर्वथा त्यागी जीवन का स्वीकार—इसमें ५ महाव्रत मुख्य हैं; मन, वचन, काया से करना कराना एवं अनुमोदन करने रूप ९ भंग से जीव की हिंसा झूठ चोरी, अब्रह्मचर्य और और परिग्रह को त्याग रूप व्रतों के स्वीकार को सर्वविरति कहते हैं।

आदेश दिया। जहां उपाध्यायजी के कुटुम्बी लोग निवास करते थे। वहां जाकर उन्होंने तपस्यादि धर्मकार्यों में सविशेष प्रगति की।

सूरिजी के पधारने से वागड़ देश में अतीव धर्म प्रभावना हुई लोगों की भक्ति का स्रोत दिन-दिन अधिकाधिक प्रवाहित होने लगा और वहां की धर्मोन्नति के समाचार चारों ओर फैल गये।

चैत्यवासियों का उपसम्पदा ग्रहण

श्री जयदेवाचार्य[1] नामक चैत्यवासी आचार्य ने जब यह सुना कि श्रीजिनवल्लभसूरिजी के पट्टधर सर्वगुण सम्पन्न श्रीजिनदत्तसूरिजी के पधारने से बहुत शासन प्रभावना हो रही है, तो उन्होंने सोचा कि बहुत अच्छा हुआ! श्रीमद् अभयदेवसूरिजी के पास श्री जिनवल्लभसूरिजी ने चैत्यवास त्याग कर वसति[2]-

१ इन्होंने सं० १२२३ में बब्बेरक में श्रीजिनपतिसूरिजी को मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरिजी के पट्ट पर स्थापित किया था।

२ वसतिवास—इसका विशेष प्रचार दुर्लभराज की सभा में हुए—जिनेश्वरसूरिजी और चैत्यवासियों के साथ हुए शास्त्रार्थ के पश्चात् हुआ है। उस समय अधिकांश जैन साधु जैन मन्दिरों में ही रहने लग गए थे। जिनेश्वरसूरिजी ने इसके द्वारा होती हुई अवधि आशातना का प्रबल विरोध किया और श्रावकों के मकानादि स्थानों में मालिक की आज्ञा लेकर ठहरना प्रचारित किया। तबसे जैन मन्दिरों में न रह कर कल्प्य मकानों में ठहरने वाले उग्रविहारी, शुद्ध क्रियावान् साधुओं को वसतिवासी कहा जाने लगा।

वास की उपसम्पदा[1] ग्रहण की, सुनकर "पहले भी मेरा वसतिवास स्वीकार करने का विचार हुआ था, किन्तु दैवयोग से ऐसा न कर सका। अतः अब तो मुझे श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरण वन्दनार्थ जाकर उनसे उपसम्पदा ले ही लेनी चाहिए" वे केवल विचार करके ही नहीं रह गये पर तत्काल ही कार्य्य रूप में परिणित करने के लिए सपरिवार वंदनार्थ आए। विनय पूर्वक सूरिजी को वन्दन करने के अनन्तर वार्तालाप करते हुए मधुर सिद्धान्तवचन श्रवण कर आनन्द मग्न हो कहने लगे— अहा! कैसा शोभन उपदेश है, मेरे भवोभव ये ही गुरू हों! इसके बाद उन्होंने शुभ मुहूर्त में सर्व परिग्रह का त्याग कर सूरिमहाराज के समीप उपसम्पदा ग्रहण की।

जयदेवाचार्य के वसतिवास स्वीकार करने का संवाद पाकर श्रीजिनप्रभाचार्य[2] नामक चैत्यवासी आचार्य ने भी चैत्यवास

---

१ एक गुरु का शिष्य अन्य गुरु को अपने गुरू रूप में स्वीकार करता है उसे उपसम्पदा ग्रहण कहते हैं।

२ एक बार ये तुरुष्क देश गये, इनका केवलिका परिज्ञान सर्वत्र प्रसिद्ध था, अतः ज्ञानी जानकर वहां के अधिकारी ने इनसे पूछा—मेरे हाथ में क्या है? उत्तर में इन्होंने खांटका और बाल बतलाया। मुट्ठी खोलकर देखने पर इस प्रत्यक्ष सत्य से विस्मित होकर आचार्य का हस्त-चुम्बन कर चंगा, चंगा! कहने लगा। आचार्य ने सोचा यह मुझे साथ ले जाकर न मालूम क्या कदर्थना करेगा" अतः वहां से भागकर स्व स्थान लौट कर आ गए।

छोड़ने का निश्चय किया परन्तु साथ साथ उन्हें यह भी विचार हुआ कि श्रीजिनदत्तसूरिजी के आचार विचार असिधारा के सदृश बड़े[१] कठिन हैं। अतः कोई सरल क्रियामार्ग वाला सुविहित आचार्य मिले तो ठीक हो। यह अनुसन्धान करने के लिए उन्होंने अपने केवलिका[२] परिज्ञान का उपयोग किया। पहली बार श्री जिनदत्तसूरिजी का नाम आया, किन्तु उन्होंने गणना भूल की भ्रांति से दुबारा प्रयोग किया तब भी श्री जिनदत्तसूरि जी का नाम आया। उन्होंने पूर्ण निश्चय के लिए तीसरी गणना प्रारम्भ की, तब आकाश से अग्निपुँज गिरने के साथ ही वाणी हुई कि—"यदि तुम्हें शुद्ध मार्ग से प्रयोजन है तो पुनः पुनः क्यों गिनते हो? संसार समुद्र से निस्तार करने वाले शुद्ध मार्ग प्ररूपक सुगुरु श्रीजिनदत्तसूरि ही हैं।" यह सुनकर निःशल्य चित्त से श्रीजिनप्रभाचार्यजी सूरिमहाराज के पास आये, ज्ञान सूर्य्य सूरिजी ने कहा—तुम्हारा चिन्तामणि परिज्ञान हमारे पास स्फुरित न हो सकेगा!" उत्तर में जिनप्रभाचार्य्य ने कहा—भगवन् मुझे उसके उपयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं है, मुझे केवल विधिमार्ग से ही प्रयोजन है,

---

१ इससे सूरिजी का साधु धर्म, बड़ी उच्च कोटि का पालन करना झलकता है।

२ एक प्रकार का निमित्त शास्त्र।

कृपया आप मुझे अपनी उपसम्पदा देकर कृतार्थ करें।" सूरिजी ने उनका दृढ़ निश्चय जानकर उपसम्पदा प्रदान की। जिनप्रभाचार्य भी सूरिजी के आज्ञानुसार विहार कर विधिमार्ग का प्रचार करने लगे।

सूरिजी का गुणसौरभ सर्वत्र महक उठा। उनके असाधारण ज्ञान, कठोर चारित्र ने सर्व-साधारण की तो बात ही क्या? पर उनके विरोधी चैत्यवासियों को भी अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उनके सद्गुणों से प्रभावित होकर जयदेवाचार्य और जिनप्रभाचार्य की भांति विमलचन्द्र नामक चैत्यवासी ने भी सुविहित मार्ग स्वीकार किया। इसी समय जिनरक्षित[1] शीलभद्र अपनी माताके साथ और स्थिरचन्द्र[2] वरदत्त नामक दोनों भ्राता भी प्रव्रजित हुए।

इसी प्रकार जयदत्त नामक मन्त्रवादी मुनि (जिनके पूर्वज मन्त्र शक्ति में बड़े ही प्रवीण थे और जिन्हें दुःसाधित दुष्ट देव ने नष्ट कर डाला था) दुष्ट व्यन्तर के उपद्रव से दुखित

१ इनके सं० ११७० में धारानगरी में लिखित "पट्टावली षटपदानि" की प्रति "अपभ्रंश काव्यत्रयी" के परिशिष्ट में प्रकाशित है।

२ जेसलमेर भंडार की ताड़पत्रीय पचाशक की प्रति में लिखा है सं० १२०७ में पाली के भंग होने पर त्रुटित रूप से प्राप्त उक्त प्रति को इन स्थिरचंद्रजी ने अजमेर में लिख कर पूर्ति की थी।

होकर श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरणों में उपस्थित हुए और उनके पास दीक्षा (उपसम्पदा) ग्रहण की। शक्तिसम्पन्न पूज्यश्री ने करुणान्वित होकर दुष्ट देव से उनकी रक्षा की।

यति गुणचन्द्रगणि[१] और ब्रह्मचन्द्रगणि[२] ने सूरिजी के पास चारित्र ग्रहण किया। रामचन्द्रगणि भी अपने पुत्र जीवानन्द सहित अन्य गच्छों से खरतरगच्छ को विशुद्ध ज्ञात कर श्रीजिनदत्तसूरिजी के आज्ञानुवर्ती हो गए।

इस में से जिनरक्षित, शीलभद्र, स्थिरचन्द्र वरदत्त आदि

१ पहले जब ये श्रावक थे तब एक तुर्क ने इनकी हस्तरेखा देख "यह अच्छा भंडारी होगा" ज्ञात कर इन्हें भाग जाने की संभावना से दृढ़ सांकलों से बांध दिया। इन्होंने इस विपत्ति में लाख नवकार का जाप किया, जिसके प्रभाव से सांकल टूट गई अतः मुक्त होकर रात्रि के पिछले प्रहर में निकल कर किसी वृद्धा के घर पहुंचे। उसने इन्हें करुणा लाकर कोठी में छिपा लिया जिससे तुर्क के बहुत खोज करने पर भी न मिले और रात के समय निकलकर स्वदेश लौट आये। इस विपत्तिके प्रसङ्ग से वैराग्य प्राप्त कर इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। सं० १२२३ में मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरिजी का स्वर्गवास होने पर आपने संस्कृत के ः श्लोकों द्वारा शोक प्रकट किया था। सं० १२३२ मिती फाल्गुन शुक्ला १० को इनके स्तूप की प्रतिष्ठा विक्रमपुर में श्रीजिनपतिसूरिजी ने की थी।

२ सं० ११७१ पाटण में इनके लिखी हुई 'पट्टावली षटपदानि' की प्रति जेसलमेर के ज्ञानभंडार में सुरक्षित है।

साधु एवं श्रीमती, जिनमती, पूर्णश्री, आदि साध्वियों को वृत्ति-पञ्जिका-पंजिकादि लक्षणशास्त्रों का अध्ययन करने के लिए आपने धारानगरी भेजा।

सूरि महाराज ने लाभ जानकर रुद्रपल्ली की ओर विहार किया। मार्ग के एक ग्राम में एक श्रावक को दुष्ट व्यन्तर प्रतिदिन प्रचण्ड पीड़ा देता था, उसके पुण्य प्रभाव से सूरि महाराज वहां पधारे। उसने आपके समक्ष अपना दुख निवेदन किया। सूरिजी ने विचार के देखा यह व्यन्तर मन्त्र, तन्त्र से असाध्य है अतः "गणधरसप्ततिका"¹ ग्रन्थ बना कर और उसे टिप्पणक रूप में लिखकर श्रावक को देते हुए कहा कि "इस टिप्पणक पर दृष्टि लगाए रखना" उसने वैसा ही किया। ग्रंथ के ध्यान के प्रभाव से पहले दिन व्यन्तर उसको खटिया तक आया परन्तु काय-प्रवेश न कर सका, दूसरे दिन गृह-द्वार से लौट गया और तीसरे दिन आया ही नहीं। श्रावक स्वस्थ होकर सविशेष धर्माराधन करने लगा।

सूरि महाराज रुद्रपल्ली पहुंचे, जिनशेखरोपाध्याय संघ सहित सम्मुख आए; प्रवेशोत्सव बड़े समारोह से किया गया। श्रीजिनवल्लभसूरिजी के आज्ञानुयायी १२० कुटुम्बों के बनवाये

१ प्रस्तुत ग्रन्थ गणधर सार्धशतक के सदृश है। इसमें कई गाथाएं "गणधर सार्द्ध शतक" से ज्यों की त्यों और कुछ समान भाव वाली पाई जाती हैं।

हुए ऋषभदेव और पार्श्वनाथ चैत्य- द्वय की सूरिजी ने प्रतिष्ठा की। उनके ओजस्वी व्याख्यान से वहाँ अनेकानेक धर्मकृत्य हुए। कितने ही महानुभावों ने सम्यक्त्वव्रत, कइयों ने देशविरति धर्म ग्रहण किया एवं देवपाल गणि प्रभृति कई व्यक्तियों ने सर्व-विरति चारित्र अङ्गीकार किया। रुद्रपल्ली[1] के श्रावकों के अत्यंत अनुरोध करने पर भी लाभा-लाभका विचार करते हुए श्रीजयदेवाचार्यजी को वहां भेजने की सूचना देकर सूरि-महाराज ने पश्चिम की ओर विहार कर दिया।

सूरि महाराज वहां से उग्र विहार करते हुए वागड़ देश के

---

१ हमारे चरित्रनायक के शिष्य मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरिजी सं० १२२२ में बादली नगर से रुद्रपल्ली पधारे थे। यहाँके नरपालपुर में एक ज्योतिषी को अपनी ज्योतिष विद्या का चमत्कार दिखाकर पुनः रुद्रपल्ली आकर पद्मचंद्राचार्य से शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की थी। फिर यहां से बोरसिदान होकर दिल्ली पहुंचे थे। इस उल्लेख के अनुसार रुद्रपल्ली की अवस्थिति दिल्ली प्रान्त के आसपास संभव है। जेसलमेर के बड़े ज्ञानभंडारकी ताड़पत्रीय प्रति नं० २६ (२) वासवदत्ता सं० १२०७ में रुद्रपल्ली में राजा गोविन्दचंद्र के राज्य में लिखी गई है अतएव रुद्रपल्ली संयुक्तप्रान्त के पश्चिमी भाग में ही कहीं होनी चाहिए।

इसी स्थान के नाम से जिनशेखरसूरिजी (जो पहले यहां के निवासी थे) की संतति रुद्रपल्लीय के नाम से प्रसिद्ध हुई।

व्याघ्रपुर[1] में पधारे। श्रीजयदेवाचार्यजी वहीं विराजमान थे, उन्हें योग्य शिक्षा देकर रुद्रपल्ली भेज दिये। सूरिजी ने वहां रह कर श्रीजिनवल्लभसूरि कथित चैत्य-गृह-विधि अविधि के स्वरूप गर्भित "चर्चरी" नामक ग्रन्थ बनाया और उसे टिप्पणिका के आकार में लिखकर मेहर, वासल आदि श्रावकों के पठनार्थ विक्रमपुर भेजा। वहां सणिहय नामक श्रावक के घर के पास ही पौषधशाला थी। सूरिजी के भेजे हुए चर्चरी ग्रंथ को वहां के भक्त श्रावकों ने उसी पौषधशाला में खोला। सणिहय के उद्दण्ड पुत्र देवधर ने वहां आकर "यह चर्चरी टिप्पणक है?" कहते हुए फाड़ डाला। उसके उन्मत्त होने के कारण श्रावकों ने उसका कोई प्रतिकार न कर उसके पिता को उपालम्भ दिया पर वे भी "क्या किया जाय! यह बड़ा दुष्ट है, समझा दूंगा" कह कर रह गए।

सूरिजीने वहां के श्रावकों द्वारा उपर्युक्त स्वरूप ज्ञात कर पुनः चर्चरी ग्रंथ की टिप्पणिका लिख भेजी। उन्होंने साथ साथ यह भी कहलाया कि देवधर के विरुद्ध कुछ भी आन्दोलन न किया जाय! देव गुरु के प्रसाद से वह स्वयमेव सुधर जायगा।" श्रावकों ने चर्चरी ग्रंथ को पाकर पौषधशाला में सानन्द पढ़ा और स्थापनाचार्यजी[2] के आले में रख

---

१ विशेष संभव वर्त्तमान वघेरा स्थान है।

२ गुरु (आचार्य) की अविद्यमानता में गुरु बुद्धि से जिस वस्तु में

उपाश्रय बन्द करके स्वस्थान चले गए। देवधर ने जब चर्चरी ग्रन्थ के पुनः आने का सम्वाद पाया तो सोचा कि मैंने पहले इसे फाड़ दिया तब भी आचार्यश्री ने दुबारा भेजा है तो अवश्य ही उसमें कुछ रहस्य होगा! अतः कौतूहलवश उसे पढ़ने के लिए अपने घर के ऊपरवाड़े से पोषधशाला में प्रवेश कर उक्त ग्रन्थ को ध्यानपूर्वक पढ़ना प्रारम्भ किया। वह उसमें वर्णन किये हुए विधिचैत्य[१] अविधिचैत्य के स्वरूपको बिल्कुल सच्चा और न्यायसंगत जान कर बड़ा ही प्रमुदित हुआ। थोड़ीसी देर में उसके विचारों में आश्चर्यकारी परिवर्त्तन हो गया। वह मन ही मन कहने लगा—"आह! इसमें जिन भवन की क्या ही सुन्दर विधि लिखी है, स्थालीपुलाक[२] न्याय से

गुरुपद का आरोप किया जाय उसे स्थापनाचार्य कहते हैं चाहे वह चित्र पुस्तक या चन्दनादि से निर्मित पंच परमेष्ठि स्थापना हो। उसे गुरु के सदृश बड़े आदर के साथ ऊंचे स्थान में स्थापित किया जाता है और उसी की साक्षी से धर्मक्रियाएं की जाती हैं।

१ जिस मन्दिर में आगमोक्त विधि—मर्यादा का प्रचलन हो उसे विधिचैत्य और जहां आगम विरुद्ध आचरण व आशातनाएं होते हों उसे अविधिचैत्य कहते हैं।

२ थोड़े से नमूने से सारी वस्तु के भले बुरे का ज्ञान हो जाने को स्थालीपुलाक न्याय कहते हैं।

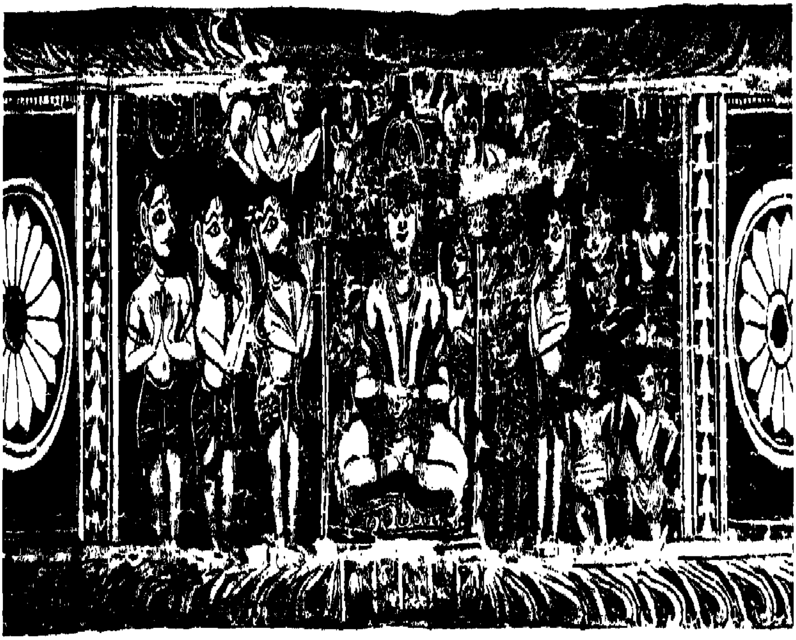
आचार्यश्री के अन्य उपदेश भी विशुद्ध एवं गम्भीर होंगे अतः मुझे अवश्य ही विधिमार्गानुगामी होना चाहिये ! इस ग्रन्थ में केवल बिम्बों के अनायतन और स्त्री पूजा सम्बन्धी दो सन्देह रह जाते हैं अतः इन्हें पूछ कर निर्णय किया जाना आवश्यक है ऐसा विचार कर देवधर चच्चरी टिप्पणक को वापिस रख कर अपने घर चला आया।

इधर बागड़ देश में विराजित सूरि-महाराज ने धारा-नगरी की ओर प्रेषित समस्त साधु साध्वियों को बुला कर सिद्धान्तों की वाचना दी एवं स्वदीक्षित जीवदत्त मुनि को आचार्य पद, पं० जिनरक्षित, शीलभद्र, पं० स्थिरचन्द्र, पण्डित ब्रह्मचन्द्र, प० विमलचन्द्र, पं० वरदत्त, भुवनचन्द्र, वरनाग, रामचन्द्र, मणिभद्र इन मुनियों को वाचनाचार्य पद प्रदान किया। श्रीमती, जिनमती पूर्णश्री, जिनश्री, और ज्ञानश्री नामक पांच साध्वियों को महत्तरापद से विभूषित किया।

श्रीहरिसिंहाचार्यजी के शिष्य मुनिचन्द्र उपाध्याय की पूर्व प्रार्थनानुसार उनके योग्य शिष्य जयसिंह को चित्तौड़ में मुनीन्द्र (आचार्य) पद दिया और उनके शिष्य जयचन्द्र को पाटण में समवशरण की रचना के समक्ष सूरिपद दिया। सूरिजी ने जीवानन्द मुनि को भी उपाध्याय पद से अलंकृत किया।

इस प्रकार यथा योग्य पद प्रदान कर सब को भिन्न भिन्न स्थानों में विहार करने का आदेश देकर सूरि-महाराज अजमेर

भगवान् महावीरस्वामिका जन्मोत्सव



जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन पुस्तककी सचित्र काष्ठ पट्टिका

श्रीमज्जिनदत्तसूरि और उनके कुछ शिष्य





जेसलमेरमें प्राप्त प्राचीन पुस्तककी सचित्र काष्ठ पट्टिका

चौथा प्रकरण

विक्रमपुर में लक्षाधिक श्रावक प्रतिबोध

हम तीसरे प्रकरणमें कह चुके हैं कि जिनदत्तसूरिजीके चचरी ग्रन्थ के अध्ययन से सण्हियापुत्र देवधर बहुत प्रभावित हो गया था। उसने विक्रमपुर की ओर श्री जिनदत्तसूरि जी के विहार कराने के निश्चित विचार से अपने पिता श्रेष्ठी आसदेव को निवेदन कर अपने ७५ कुटुम्बी श्रावक समुदाय के साथ प्रयाण कर दिया। नागौर पहुंचने पर वह देव-वन्दनादि करने के लिए सुप्रसिद्ध चैत्यवासी देवाचार्य[१] के

---

[१] आप मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य थे। मड्डाहड के प्राग्वाट वीरनाग की पत्नी जिनदेवी की कुक्षि से सं० ११४३ में आपका जन्म हुआ। आपका जन्म नाम पूर्णचन्द्र था। सं० ११५२ में भरौंच में दीक्षा हुई और रामचन्द्र नाम रखा गया। सं० ११७४ में आपको आचार्य पद मिला। सं० ११८१ में पाटण के नरपति सिद्धराज की सभा में दिगम्बर वादि-कुमुदचन्द्र को वाद में परास्त किया। तबसे आप वादिदेवसूरि नाम से प्रसिद्ध हुए। सं० १२२६ में आप स्वर्गवासी हुए। आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ स्याद्वादरत्नाकर है। हमारे संग्रह में वादिदेवसूरिजी के चरित्र की एक महत्वपूर्ण अधूरी प्रति है, विशेष जानने के लिए देखें, जैन सत्यप्रकाश वर्ष ५ अङ्क ८।

देवगृह में गया। पादप्रक्षालनादि शुद्धि कर देववन्दन करने के पश्चात् श्रीदेवाचार्य की वन्दना की। आचार्य से क्षेम कुशल पूछने के अनन्तर देवधरने उनसे पूछा भगवन्! क्या देवगृह में रात्रि के समय स्त्री-प्रवेश, प्रतिष्ठा, बलिविधान, नंद्यादि करना उचित है? देवाचार्यने चौंक कर सोचा, इसके कानों में श्रीजिनदत्तसूरिजी का अमोघ मंत्र पड़ गया मालूम होता है। उन्होंने कहा श्रावक! रात्रि के समय स्त्री-प्रवेशादि संगत नहीं है" देवधर ने पूछा—"तो आप निषेध क्यों नहीं करते" आचार्य ने कहा "लाखों मनुष्य ऐसा करते हैं; यह एक रूढ़ि पड़ गई है किसे किसे रोका जाय! देवधर ने कहा—भगवन! जिस देवगृह में जिनाज्ञा की अवहेलना होकर स्वेच्छाचार होता हो वह जिनगृह है या जनगृह? आचार्य ने कहा—जहां साक्षात् जिनेश्वरों का बिम्ब विराजमान हो वह जिनमन्दिर क्यों न कहा जाय!" प्रत्युत्तर में देवधर ने कहा "आचार्य! इतना तो हम मूर्ख भी समझते हैं कि जहां पर जिसकी आज्ञा न मानी जाती हो वह उसका घर नहीं कहा जा सकता अतः जहां जिनाज्ञा पालन न हो, उसे जिनमन्दिर क्यों कर कह सकते है? आप विद्वान हैं, पर इन सब बातों को जानते हुए भी प्रचलित अशुद्ध प्रवाह को रोकना तो दूर रहा किन्तु पुष्टि करते हैं। अतएव एसे गुरुओं को आज से मेरी अन्तिम वन्दना है। मैं तो जहां तीर्थंकरों की आज्ञा का यथावत पालन होता है, उसी मार्ग का अनुसरण करूंगा! इतना कह कर

देवधर वहां से चला आया एवं अपने कुटुम्बियों के साथ अजमेर रवाना हुआ। चैत्यवासी आचार्य से हुए सम्भाषण को सुन उसके कुटुम्बी श्रावक भी विधिमार्ग में विशेष श्रद्धा-वान् हुए।

देवधर अपने १५ कुटुम्बियों के साथ अजमेर पहुंचा। श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरण-कमलों में भक्तिपूर्वक वन्दना करने के अनन्तर उनसे व्याख्यान श्रवण किया एवं धार्मिक प्रश्न पूछ कर अपने सन्देह निवारण किये। संसार में सद्गुरु की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। देवधर के हृदय में पूज्यश्री के उपदेशों से जादू का सा असर हुआ। उसकी उद्दण्डता तो सूरिजी के चर्चरी ग्रंथ से ही शान्त हो गई थी। साक्षात् गुरु दर्शन से उसके हृदय का अज्ञानतिमिर दूर हो विधिमार्ग का विमल प्रकाश फैला। जिस प्रकार पारस लोहे को भी कंचन कर देता है उसी तरह सद्गुरु भी दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य को शिष्ट एवं विवेकी बना देते हैं।

देवधर ने भक्तिगद्गद् हृदय से सूरिजी को विक्रमपुर पधारने की नम्र अभ्यर्थना की। सूरिजी भी लाभ जान कर अजमेर के जिन बिम्ब, जिनालय, अम्बिका एवं गणधरादि की महोत्सव के साथ प्रतिष्ठा कर देवधर के साथ विक्रमपुर पधारे।

गणधर सार्द्धशतक वृहद्वृत्ति से ज्ञात होता है कि उस समय वहां (विक्रमपुर में) भूत प्रेतादि का बहुत उपद्रव था। सूरि महाराज ने उन सबको प्रतिबोधित कर समस्त उपद्रवों को

उपशान्ति की। पट्टावलियों में लिखा है कि जिस समय सूरिजी पधारे, यहां के जैन मन्दिर के दरवाजे व्यन्तर देवों द्वारा बन्द किये हुए थे। सूरिजी ने आकर अपने तपोबल से उन देवों को आज्ञानुवर्ती बना कर दरवाजे खुलवा दिये। कई पट्टावलियों में लिखा है कि मन्दिर के दरवाजे सूरिजी के हस्तस्पर्श से खुल गए।

पट्टावलियों से स्पष्ट है कि उस समय वहां मारि रोग का बड़ा प्रकोप था। श्रावकों के अनुरोध से और जैनशासन की प्रभावना को लक्ष्य कर सूरिजी ने सप्तस्मरण गुणनादि धार्मिक अनुष्ठान द्वारा उसे शान्त कर दिया। इसपर वहाँ के माहेश्वरी, ब्राह्मणादि जैनेतरों ने भी अपने को इस उपद्रव से बचाने की प्रार्थना की। सूरिजी के उपदेश से उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस प्रकार जीवितदान से उपकृत होकर हम जैन धर्म का आश्रय लेंगे। जो व्यक्ति ऐसा न करेगा वह अपनी संतान में से पुत्र पुत्री आपको शिष्य रूप में भेंट करेगा। सूरिजी के प्रभाव से सारे नगर एवं आसपास का मारि-रोगोपद्रव शान्त हो गया। संख्याबद्ध माहेश्वरी आदि कुटुम्बों ने जैन धर्म स्वीकार किया[१]। यहां लगभग ५०० शिष्य और ७००शिष्याएँ

---

१ कई पट्टावलियों में लिखा है कि जिनदत्तसूरिजीने ओसियां में लक्षाधिक जैन बनाए। पर हमारे ख्याल से यह ओसियां में न होकर विक्रमपुर व उसके आसपास के मरुमण्डल और सिन्धुमण्डल में आप श्री

दीक्षित हुईं। संवत १५८२ की 'सूरिपरम्परा प्रशस्ति" में लिखा है कि:—

"ये नाथो विक्रमाख्ये विपुलपुरवरेऽवारि मारि प्रबोध्य।
लोका माहेश्वरीयास्तदपि हि गुरुणा स्थापिता जैनधर्मे ॥ ४८ ॥
तस्मिन्नेव पुरेऽक्ष सप्त गुणितं साधुव्रतिन्यो पृथग्।
एकस्यामपि दीक्षितं समभुवन्नंघ्रो क्षणात्सोप्यथ ॥',

(खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह पृ० ४)

संवत् १२७८ के लगभग बने हुए गुरुगण षट्पद में लिखा है—"अभयदाण जिण दिन्नु सयल संघह विक्कमपुरि"

(ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह पृ० २)

इस प्रकार विक्रमपुर के रोगोपशान्ति द्वारा सूरिजी का सुयश चारों ओर व्याप्त हो गया। सूरिजी के इस प्रभावशाली चमत्कार से आसपास की जनता भी बहुत प्रभावित हुई। स्थानीय जनता अपना और अपने इष्ट जनों का जीवित दान पाकर बहुत ही आनन्दित हुई। भक्ति का श्रोत दिनों दिन प्रवर्द्धमान गति से प्रवाहित होने लगा। उन्होंने चरम तीर्थंकर

के प्रतिबोधित श्रावकों की संख्या होगी। प्राकृत प्रबधावली में लिखा है कि सूरिजी ने सिन्धु देश में विहार करके एक लाख अस्सी हजार घरों को प्रतिबोध देकर ओसवाल बनाया। सूरिजी के स्थापित ओसवाल गोत्रों का विस्तृत वर्णन महाजन वंश मुक्तावली आदि में देखना चाहिए। हमारे संग्रह की गोत्र सूची परिशिष्ट में दी जा रही है!

श्री महावीर[1] भगवान की प्रतिष्ठा बड़े समारोह के साथ सूरिजी के करकमलों से करवाई। इस प्रकार धर्म की महान् प्रभावना करते हुए सूरि-महाराज उच्चनगर[2] पधारे। वहां पर भी उस समय भूत प्रेतादि का उपद्रव खूब जोरों से था। सूरिजी ने उन्हें प्रतिबोध देकर जनता को जैन धर्म की ओर आकर्षित किया। इस प्रकार मरु-मण्डल और सिन्धु देश में आपके असाधारण प्रभाव व उपदेशामृत से अनेकानेक व्यक्तियों ने जैन धर्म का प्रतिबोध पाया। जिनदत्तसूरिजी की एक प्राचीन स्तुति में आपके प्रतिबोधित श्रावकों की संख्या एक लाख बतलाई है, यथा:-

सूरि मंत्र बलि कर सहिय साहिय जिण धरणिन्द।
सावय साविय लक्ख इग पडिबोहिय जण वृन्द ॥

वहां से ग्रामानुग्राम विचर कर अनेक भव्यों को प्रतिबोध देते हुए सूरि-महाराज नगर[3] होते हुए त्रिभुवनगिरि पधारे।

---

१ पीछे से यह मन्दिर तीर्थ रूप में प्रसिद्ध हो गया था। सं० १३४१ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने इस तीर्थ की वन्दना की थी। मिती फाल्गुन बदि ११ को यहां दीहा आदि अनेक उत्सव होने का उल्लेख गुर्वावली में पाया जाता है। पता नहीं यह प्रतिमा कबतक वहां रही और अब कहां है।

२ यह नगर सिन्ध में है। यहां के राजपूत राज्य को संवत् १२३५ के लगभग मुहम्मद गोरी ने समाप्त कर दिया। यह किसी समय अच्छी समृद्धिशाली नगर था।

३ यह नगर जयपुर राज्य का प्राचीन ऐतिहासिक स्थान है, जहां लगभग ६००० पुराने सिक्के प्राप्त हो चुके हैं। गुर्वावली में नगर के स्थान में नरवर लिखा है और वह भी प्राचीन स्थान है।

पांचवां प्रकरण

महाराजा कुमारपाल एवं योगिनी प्रतिबोध

जब सूरि महाराज त्रिभुवनगिरि[1] पधारे, उस समय वहां यादव वंशी महाराजा कुमारपाल[2] राज्य करते थे। सूरिजी की विद्वता और असाधारण प्रभाव का संवाद पाकर महाराजा सूरिजी के वन्दनार्थ आए। सूरिजी के अमृतमय उपदेश को सुनकर महाराजा का जैन धर्म के प्रति अनुराग हो गया और वे सूरिजी के परम भक्त हो गए। सूरिजी के उपदेश से

---

१ यह त्रिभुवनगिरि, वर्तमान में तहनगढ़ नाम से प्रसिद्ध है और करौली से लगभग २४ मील उत्तर पूर्व में स्थित है। इसे यादव राजा त्रिभुवनपाल ने बसाया था। इसके सम्बन्ध में विशेष जानने के लिए श्रीयुक्त पं० दशरथ शर्मा एम० ए० का लेख 'भारतीय विद्या' वर्ष २ अंक १ में देखना चाहिए।

२ ये राजा कुमारपाल यादव वंश के थे। त्रिभुवनगिरि के दुर्भेद्य किले पर इन्होंने बहुत समय तक राज्य किया। श्रीजिनदत्तसूरिजी ने इन्हें अपने अंतिम जीवन में प्रतिबोधित किया था। मुहम्मद गोरी ने सं० १२५२ में त्रिभुवनगिरि का राज्य वृद्ध राजा कुमारपाल से ले लिया था। इनके हाथ से त्रिभुवनगिरि निकल जाने के लगभग १५० वर्ष पश्चात् इन्हीं के वंशज अर्जुनपाल ने करौली बसाई।

अखण्ड तेजस्वी श्रीजिनदत्तसूरिजी का लोकोत्तर प्रभाव देख कर चैत्यवासियों में खलबली मच गई। विधि-चैत्यों का

तो रात्रि में न रहें। पर हमारे खयाल से यह बात दिल्ली में श्री जिनचंद्र सूरिजी के योगिनी के छल से (पट्टावली के कथनानुसार) स्वर्गवास हो जाने के कारण प्रसिद्धि में आई ज्ञात होती है। सूरिजी ने अपने ज्ञानबल से अपने शिष्य मणिधारीजी को दिल्ली में जाने पर अशुभ घटना का योग जान कर ही उन्हें दिल्ली जाने का निषेध किया था, यह बात जिनपालोपाध्याय की गुर्वावली से प्रमाणित है। पट्टावलियों की सब पट्टधरों के योगिनी पीठों में न जाने की बात इसलिए भी असंगत मालूम होती है कि वहां पीछे के बहुत से आचार्य अनेक बार गये हैं। यदि सब पट्टधरों को वहां जाना निषिद्ध होता तो फिर उनका जाना संभव न था। ७ वर किसने दिए? इस विषय में पट्टावलियों में मतभेद है। प्रबन्धावली के कथनानुसार ये वरदान श्री जिनदत्तसूरिजी द्वारा आराधना प्राप्त स्वर्गवासी कच्छोल्लियाचार्य ने दिये थे। कई पट्टावलियों में ७ वर माणिभद्रादि यक्ष-पंचनदी के देवों ने दिए थे, लिखा है। कई पट्टावलियों में योगिनी और इन देवों के भिन्न २ वर देने और उनके फलीभूत होने में ७ विधान (आवश्यक कर्त्तव्य) बतलाए लिखा है। वे सात वर और विधान इस प्रकार हैं जो कि विभिन्न पट्टावलियों में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ भी पाये जाते हैं।

७ वर—

१ खरतर साधु प्रायः मूर्ख न होगा।

२ साध्वियों को स्त्रीधर्म न होगा (१)

पृथक निर्माण होने से उनकी आमदनी में सांघातिक धक्का पहुंचा। हजारों श्रावक विधि-मार्ग के अनुयायी हो जाने से उनकी मान, प्रतिष्ठा भी बहुत कम हो गई। सुविहित साध्वाचार का पालन करने वाले मुनियों की वृद्धि ने उनकी विलासलीला को कण्टकाकीर्ण बना दिया। चैत्यवासी आचार्यों को

---

३ साधु साध्वियों की सर्प से मृत्यु नहीं होगी।

४ खरतरों की वचन सिद्धि होगी।

५ आपके नाम ग्रहण से बिजली न पड़ेगी।

६ शाकिनी न छलेगी।

७ खरतर श्रावक प्रायः धनवान होंगे।

७ विधान :—

१ पट्टधर पंचनदी साधन करे।

२ आचार्य प्रति दिन १००० सूरिमंत्र जाप करे।

३ खरतर श्रावक उभयकाल सप्तस्मरण पाठ करे।

४ हरेक घर में २०० क्षिप्रचटी (उवसग्गहर—नवकार) माला गुणी जाय

५ महीने में २ आंबिल हरेक घर में किये जांय।

६ पदस्थ साधु एकाशन करे।

७ साधु प्रतिदिन २०० नवकार गुणे।

उपर्युक्त वरदानों में बिजली न पड़ने के सम्बन्ध में पीछे के प्रकरण में उल्लेख किया गया है। प्राकृत प्रबन्धावली में ६४ योगिनियों की घटना जिनप्रभसूरिजी के सम्बन्ध में भी लिखी है। यह प्राकृतप्रबन्धावली 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' से प्रकाशित 'खरतरगच्छ गुर्वावली' के परिशिष्ट में छप चुकी है। ६४ योगिनियों के मंदिर सी० पी० एवं बुन्देलखंड में हैं।

सुविहित मार्ग में जाते देख उनको आन्तरिक दुख हुआ, अतः उन लोगों का सूरिजी से विरोधी होना स्वाभाविक ही था।

एक बार सूरि महाराज चित्तौड़ पधारे, नगर प्रवेश के समय विघ्नसन्तोषी लोगों ने अपशकुन करने के लिए काले साँप को रस्सी से बाँध कर सूरिजी के सन्मुख छोड़ दिया श्रावक लोग इसे अपशकुन समझ कर गीत वाजित्र बंद कर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गए। तब ज्ञान में सूर्य्य के सदृश सूरि महाराज ने फरमाया—"उदास क्यों हो रहे हो? दुष्ट अभिप्राय वाले अपने किये का फल स्वयं पा लेंगे, अपने लिये तो यह शकुन अच्छा ही है; कोई विचार मत करो!" कुछ आगे जाने पर विरोधियों ने एक नकटी स्त्री सूरिजीके सन्मुख भेजी वह पूज्यश्री का मार्ग रोक कर खड़ी हो गई। सूरिजीने कहा "आई! भल्ली?" उसने उत्तर दिया—"भल्लइ धाणुक्कइ मुक्की" मृदु हास्य पूर्वक प्रतिभाशाली पूज्यश्रीने कहा "पक्खाहरा तेण तुह छिन्ना?"। यह सुनकर वह निरुत्तर[1] होकर चली गई। पूज्यश्री बड़े समारोह के साथ नगर में प्रविष्ट हुए। वहाँ पर जिनबिम्ब प्रतिष्ठा सम्बन्धी बहुत से उत्सवादि हुए।

---

१ सूरिजी ने पहले कहा—तुम भली आई-भल्ली का अर्थ भली और बाण होता है। उस औरत ने सूरिजी की बात का जवाब बाण अर्थ में दिया कि धानुष्किक-धनुर्धारी ने (तुम्हारे लिए) भल्ली-बाण छोड़ा है तब पूज्यश्री ने बाण अर्थ को स्वीकारते हुए फरमाया कि—अच्छा! उसी बाण ने तुम्हारा नाक काट दिया? इस प्रश्न पर वह औरत स्वयं लज्जित होकर निरुत्तर हो गई।

छट्ठा-प्रकरण

युगप्रधान पद प्राप्ति और ग्रंथ रचना

उस समय सब गच्छ वाले अपने अपने आचार्यों को युगप्रधान कहते थे, तब श्रद्धासम्पन्न सात्विक शिरोमणि परमार्हत् सुश्रावक नागदेव ने[1] वर्तमान काल में युगप्रधान आचार्य वास्तव में कौन है ? इसका निर्णय करने के लिए उज्जयन्त (गिरनार) शिखर पर जाकर तपश्चर्या प्रारम्भ की। तथा तीन[2] दिन तक उपवास करने पर उसके सत्व से आकर्षित होकर अम्बिका देवी प्रकट हुई। उसका अभिप्राय जानकर प्रसन्नता पूर्वक उसके हाथ में प्रशस्त प्रशस्ति रूप युगप्रधान का नाम लिख दिया। देवीने नागदेवसे यह भी बतला दिया कि "जो इन अक्षरों को प्रकट कर सकेंगे उन्हीं को युगप्रधान आचार्य जानना।"

---

१ महोपाध्याय पुण्यसागर व सूरचंद्रगणिकृत श्रीजिनदत्तसूरिस्तुति में नागदेव के स्थान पर अंबड़ नाम आता है पर गणधर सार्द्धशतक इत्यादि प्राचीन ग्रन्थों में नागदेव होने से यही प्रामाणिक ज्ञात होता है।

२ प्रबन्धावली, गुरुगुण वर्णन षट्पद व अन्य पट्टावलियों में ३ उपवास करना लिखा है। केवल सं० १४९० के लगभग श्री जयसागरोपाध्याय रचित गुरु पारतंत्र्य वृत्ति में ७ उपवासों का उल्लेख है।

नागदेव उन अक्षरों को पढ़ाने के लिए देशान्तरों में परिभ्रमण करने लगा। पर बहुत से आचार्यों को हाथ दिखाने पर भी कोई न पढ़ सका, क्या सूर्य्य विकाशी कमल कभी सूर्य्य के विना विकसित हो सकता है? इस प्रकार भ्रमण करते हुए वह पाटण (अणहिलपुर) में सूरिजीके समीप पहुंचा। सूरि महाराज ने उसे स्वप्रशंसात्मक देख कर स्वयं न पढ़ा और वासक्षेप डाल कर अक्षर प्रकट कर दिये। शिष्य ने सब के समक्ष उत्सुकता पूर्वक नागदेवके हाथ पर लिखी हुई गुरु स्तुति को पढ़ कर सुनाया—

दासानुदासा इव सर्व देवा, यदीय पादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थली कल्पतरुः सजीयात्, युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः॥१॥

अर्थात्—जिनके चरण कमलों में समस्त देव दासानुदास की भाँति लोटते हैं जो मारवाड़ के रेगिस्थान में कल्पवृक्ष के जसे हैं। ऐसे वे युगप्रधान (युग में प्रधान) श्रीजिनदत्तसूरिजी महाराज जयवन्ते वर्तो।

नागदेवके हर्ष का पारावार न रहा, वह जिस कल्पवृक्ष की खोज में था, मिल जानेसे सूरिजी को वन्दना कर विशेष भक्त हो गया। इस आश्चर्यजनक घटना से सूरि महाराजकी सर्वत्र देव प्रदत्त युगप्रधान पद से प्रसिद्धि हो गई। इस घटना को खरतर गुरु गुण वर्णन छप्पय में इस प्रकार लिखा है :—

जिनदत्त नंदउ सुपहु, जो भारहम्मि जुग पवरो।
अम्बाएवि पसाया, विन्नाउ नागदेवेण॥१॥

नागदेव वर सावएण, वज्जित चहेविणु।
पुच्छिय जुगवर अंबएवि, उववास करे तिणु॥
तासु सत्ति तुट्ठाय तोय करि अक्खरि लिहिय।
भणिउ सुवाईय पम्ह सय, जुग पवर सुधम्मिय॥
भमिऊण पहवि अणहिल्लपुरि, जुगपहाण तिणि जाणियउ।
जिणदत्तसूरि नंदउ सुपहु, अम्बाएवि वखाणियउ॥२३॥"

ग्रंथ रचना

सूरि महाराज ने मारवाड़, सिन्ध, गुजरात, बागड़, मेवाड़, सोरठ मालवादि अनेक देशों में विहार कर जैन शासन की महान् सेवा के साथ साथ लोक हितार्थ बहुत से प्राकृत, अपभ्रंश और संस्कृत भाषा के ग्रन्थ बनाये। वे ग्रंथ पद्य परिमाण में छोटे होते हुए भी अर्थ में अतिशय गम्भीर हैं। जिस प्रकार आप श्री के उपदेश एवं अन्य कार्यकलाप असाधारण प्रभावशाली थे उसी प्रकार आपके ग्रन्थ भी बड़े ही सप्रभाव हैं। गणधरसप्ततिका और चर्चरी का अद्भुत प्रभाव आगे वर्णन किया जा चुका है। आपके रचित तंजयउ स्तोत्र, सुगुरुपारतंत्र्य स्तोत्र और विघ्नविनाशी स्तोत्र आज भी अपने प्रभाव के कारण सप्तस्मरणों में योजित हैं, जिन्हें हजारों मनुष्य प्रतिदिन स्मरण कर विघ्न परम्पराओं से निर्भय होते हैं। मन्त्र गर्भित महाप्रभावक पार्श्वनाथ स्तोत्रका प्रत्यक्ष प्रभाव तो विशेष उल्लेखनीय है। सूरिजी की रचनाओं में उनकी विद्वत् प्रतिभा और अपूर्व व्यक्तित्व

स्पष्ट झलक रहा है। आप श्री की कृतियों की सूची इस प्रकार है :–

स्तुति परक रचनाएं

१ गणधरसार्द्धशतक[1] प्राकृत गा० १५०

---

[1] इस पर सं० १२९५ में सुमति गणि ने १२००० श्लोक प्रमाण बृहद् वृत्ति बनाई जिसकी प्रतिएं हमारे संग्रह में और बृहद्ज्ञानभण्डारादि में विद्यमान है। इसी बृहद्वृत्ति के आधार से १४ वीं शती में सर्वराजगणि ने १६०० श्लोक परिमाण की संक्षिप्त वृत्ति बनाई जिसकी प्रतियां अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, जयपुर भंडार, राय बद्रीदास जैन म्यूजियम, कलकत्ता आदि में है। बृहद्वृत्ति के आधार से १ अन्य वृत्ति भी सं० १६४६ पौष शुक्ला ७ को जेसलमेर में २३७९ श्लोक परिमाण पद्ममन्दिर गणि ने बनाई जिसकी प्रति ६० पत्रों की जयपुर भंडार में उपलब्ध है। सतरहवीं शती में चारित्रसिंह गणिने वर्द्धमानसूरिजी से श्रीजिनदत्तसूरिजी तक के जीवनचरित्र को बृहद्वृत्ति से अलग उद्धृत कर लिया, जिससे चरित्रसिंहगणि कृत कहलाने लगा। इनमेंसे सर्वराजगणि कृत लघुवृति हीरालाल हंसराज और चारित्रसिंह उद्धृत अंतर्गत प्रकरण मूल व छाया सहित श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार-सूरत से प्रकाशित हो गया है। अपभ्रंश काव्यत्रयी में मूल संस्कृत छाया सह और मूल छाया व गुजरानुवाद एवं चारित्रसिंह गणि उद्धृत आचार्य चरित्रों के गूर्जरानुवाद के साथ 'श्रीगणधर सार्द्धशतकम्' नाम से श्रीजिन-कृपाचंद्रसूरि ज्ञानभंडार, इन्दौर से प्रकाशित हो चुका है। पद्ममन्दिर वाली वृत्ति को उपाध्याय श्रीसुखसागरजी महाराज ने छपवा दी है एवं बृहद्वृतिको छपवा रहे हैं।

२ गणधर सप्ततिका[१]	प्राकृत	गा०	७५
३ सर्वाधिष्ठायी स्तोत्र[२] (तंजयउ)	प्रा०	गा०	२६
४ सुगुरु पारतंत्र्य स्तोत्र[३] (मयरहियं)	प्रा०	गा०	२१
५ विघ्नविनाशी स्तोत्र (सिग्घमवहरउ)[४]	प्रा०	गा०	१४

---

१ इसके रचे जाने का कारण आगे लिखा जा चुका है। जेसलमेर भंडार की ताड़पत्रीय प्रति में इसकी ७५ गाथाएं हैं और थाहरुशाह भंडार जेसलमेर में टिप्पणाकार कपड़े पर लिखित प्रति है। इसकी नकल हमारे संग्रह में भी है।

२, ३, ४ ये तीनों स्तोत्र सप्तस्मरण के अन्तर्गत होनेसे हमारे प्रकाशित अभयरत्नसार एवं सभी खरतरगच्छीय पंचप्रतिक्रमण व सप्तस्मरण संग्रहादि ग्रंथों में प्रकाशित हैं। श्री अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला से प्रकाशित पंचप्रतिक्रमण (हिन्दी अनुवाद) में संस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद सहित एवं अन्य खरतरगच्छीय सानुवाद पंचप्रतिक्रमण ग्रन्थों में ये तीनों स्तोत्र सानुवाद प्रकाशित हैं। इनमें 'तंजयउ' और मयरहियं पर जयसागरोपाध्याय ने सं० १४९५ के लगभग और पं० कृष्ण शर्मा कृत सुबोधिनी टीका व हिन्दी अनुवाद सह आत्मोन्नतिकर जैन श्वेताम्बर सभा, इन्दौर से प्रकाशित है। और 'सिग्घमवहरउ' पर अज्ञात वृत्तिकार कृत टीकाएं बीकानेर ज्ञानभण्डार में उपलब्ध हैं। सं० १६९५ में रचित समयसुन्दरजी की सप्तस्मरणवृत्ति में इन तीनों की टीका आ गई है इसे उ० श्री सुखसागरजी म० ने छपाई है। महोपाध्याय साधुकीर्ति कृत बालावबोध (यति डूंगरसी भण्डार, जेसलमेर) में इन तीनोंके बालावबोध हैं।

६ श्रुतस्तव[1]	प्रा०	गा०	२७
७ अजित शान्ति स्तोत्र[2]	संस्कृत	गा०	१५
८ पार्श्वनाथ मन्त्रगर्भित स्तोत्र[3]	प्रा०	गा०	३७
९ महाप्रभावक स्तोत्र[4]	प्रा०	गा०	३
१० चक्रेश्वरी स्तोत्र[5]	संस्कृत	गा०	१०
११ योगिनी स्तोत्र[6]			
१२ सर्वजिन स्तुति[7]	संस्कृत	गा०	४
१३ वीर स्तुति[8]	संस्कृत	गा०	४

१ जेसलमेर भण्डार की ताड़पत्रीय प्रति में २७ गाथा का यह श्रुत साहित्य के नामोल्लेख सह स्तुतिरूप में है।

२ इसकी दो प्रतियां हमारे संग्रह में है। जैन स्तोत्र सन्दोह भा० १ में प्रकाशित भी हो गया है।

३, ४ इनकी प्रतियां बीकानेर बृहद्ज्ञानभण्डार व श्रीजिनचरित्रसूरिजी के भण्डार में है। नं० ८ जैनस्तोत्र संदोह भा० २ में पूर्णकलश गणि की कृतिरूप में यह स्तोत्र छपा है, पर हमने १७ वीं शताब्दी की १ अन्य टिप्पण वाली प्रति में भी इसके कर्त्ता जिनदत्तसूरिजी लिखा देखा है।

५ इसकी नकल हमारे पास है।

६ यह आणंदसूरिगच्छ भण्डार सूरत के बं० १७ में प्रति नं० में है।

७ इसकी नकल हमारे पास है।

८ यह हमारे प्रकाशित अभयरत्नसार में व रत्नसागरादि में छप गया है।

औपदेशिक एवं आचरणा सम्बन्धी

१४ सन्देहदोलावली[1]	प्रा०	गा०	१५०
१५ उत्सूत्र पदोद्घाटन कुलक[2]	प्रा०	गा०	३०
१६ चैत्यवन्दन कुलक[3]	प्रा०	गा०	२८
१७ उपदेश कुलक[4]	प्रा०	गा०	३४

१ इसका दूसरा नाम संशयपदप्रश्नोत्तर भी है। इस पर सं० १३२० में प्रबोधचन्द्रगणि ने ४५०० श्लोक प्रमाण वृहद्वृत्ति और सं० १४९५ के लगभग जयसागरोपाध्याय ने १५०० श्लोक परिमाण को लघुवृत्ति रची। इनमें प्रथम श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार, सूरत से और द्वितीय हीरालाल हंसराज जामनगर से प्रकाशित है। प्रबोधचन्द्रगणि के कथनानुसार यह ग्रन्थ भटिण्डे को खरतर श्राविका के प्रेषित प्रश्नों के उत्तर-रूप में बनाया गया है।

२ यह ग्रंथ जिनदत्तसूरिचरित्र उतरार्द्ध पृ० ४२५ में श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार सूरत से व धर्मसागरकृत इर्यापथिकी षट्त्रिंशिका पृ० ४० में आगमोदय समिति द्वारा सूरत से प्रकाशित हो चुका है।

३ इसके अन्य नाम देववंदन कुलक, सम्यक्तवारोप विधि कुलकादि है। यह, सं० १३८३ में श्रीजिनकुशलसूरिजी रचित वृत्ति (४४०० श्लोक परिमाण), व लब्धिनिधान कृत संक्षिप्त टिप्पण सह श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार सूरत से प्रकाशित हो गया है। वृत्ति का विशेष परिचय हमने अपनी "दादा जिनकुशलसूरि" पुस्तक में दिया जाता है।

४ जेसलमेर भंडार को ताड़पत्रीय प्रति में ३४ गाथा का यह ग्रंथ है, नकल हमारे पास है।

आध्यात्मदीपिका, और पट्टावली आपके रचित होने का उल्लेख किया है। इसीके अनुसार शेरसिंहजी गौड़वंशी सम्पादित श्रीजिनदत्तसूरि चरित्र (सं १६८०) और जिनदत्तसूरि ज्ञान-भंडार, बम्बई से प्रकाशित शासनप्रभावक श्रीजिनदत्तसूरिजी नो जीवनचरित्र में भी इन ग्रन्थों का उल्लेख है। पर ये ग्रन्थ सूरिजी के रचित होने का कोई प्रमाण नहीं। इनमें प्रबोधोदय तो जिनपतिसूरिजी के वादस्थल का ही नाम है, पद स्थापना पद व्यवस्था का ही अपर नाम होगा एवं पट्टावली कवि पल्ह कृत "श्रीजिनदत्तसूरि स्तुति" ही होगी। शेरसिंहजी सम्पादित चरित्र में इनके अतिरिक्त शकुनशास्त्र भी आपकी रचनाओं में लिखा है व सूरिजी के नाम से वह प्रकाशित भी हो चुका है पर यह विवेकविलास के कर्त्ता वायड़ गच्छीय श्री जिनदत्तसूरिजीकी कृति है।

सातवां प्रकरण

स्वर्गवास और शिष्य परम्परा

सूरि महाराज ने अपने उग्रविहार द्वारा बहुत से ग्राम नगरों को पवित्र किया, लाखों की संख्या में जैनेतरों को जैन बनाया, राजाओं को प्रतिबोध दिया, ग्रन्थ रचना द्वारा साहित्य सेवा की, चैत्यवास का उन्मूलन कर सुविहित मार्ग का प्रचार किया, नाना स्थानों में विधि-चैत्यों की प्रतिष्ठा की। इन सब बातों का उल्लेख हम पीछे के प्रकरणों में कर चुके हैं। आपके द्वारा की हुई प्रतिष्ठाओं में से रुद्रपल्ली के श्री ऋषभदेव और पार्श्वनाथ, अजमेर के पार्श्वनाथ आदि, विक्रमपुर की महावीर प्रतिमा, त्रिभुवन-गिरि के शांतिनाथ जिनालय एवं चित्तौड़ की प्रतिष्ठा सूरिजी के करकमलों से सम्पन्न होने का उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त धारानगर और गणपद्राहि स्थानों में भी आप श्री ने महावीर प्रभु, पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और अजितनाथ स्वामी के बिम्ब एवं जिनालयों की प्रतिष्ठा की थी। बृहद् गुर्वावली में आपके प्रतिष्ठित बद्रदह[1] में पार्श्व जिनालय,

---

1 यहीं पर श्रीजिनदत्तसूरिजी प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर था जिसका जीर्णोद्धार श्रीजिनप्रबोधसूरिजी के पधारने पर सेठ आल्हाक ने करवा कर चित्तौड़ में प्रतिष्ठित ध्वजदंड का (सं० १३३५ फाल्गुन सुदी १४ को) आरोपण किया। गुर्वावली के उल्लेखानुसार यह स्थान चित्तौड़ के पास ही होना चाहिए।

नरभट[1] में नवफणा पार्श्वनाथ एवं कन्यानयन[2] में महावीर स्वामी के विधिचैत्यों का भी उल्लेख पाया जाता है।

सूरि महाराज के करकमलों से हजारों आत्मार्थियों ने भागवती दीक्षा ग्रहण की थी। पट्टावलियों में आपके अन्तेवासी १००० शिष्य और १५०० शिष्याएं होने का उल्लेख पाया जाता है जिनमें से कतिपय दीक्षाओं का वर्णन आगे आ चुका है। आप श्री के प्रधान पट्टधर शिष्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी की दीक्षा सं० १२०३ के फाल्गुन शुक्ला ३ को अजमेर में हुई थी। इनके पिता का नाम साह रासल और माता का नाम देल्हणदे था। इनकी असाधारण प्रतिभा देखकर सूरि महाराज ने इन्हें

१ यहां के नवफणा पार्श्वनाथ का गुर्वावली में महातीर्थ रूप से उल्लेख किया है। संघ के साथ यहां की यात्रा (सं० १३७५ में) श्रीजिनचन्द्र-सूरिजी और उनके पट्टधर श्रीजिनकुशलसूरिजी ने (सं० १३८० में) की थी। गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति के अनुसार पार्श्वनाथ प्रतिमा के ९ फण का प्रचार एवं वामावर्त आरती उतारने की मर्यादा आपसे ही प्रचलित हुई थी।

२ इस स्थान के सम्बन्ध में हमने अपने "शासन प्रभावक श्रीजिनप्रभ सूरि" निबन्ध में विशेष विचार किया है जो कि "विधिप्रपा" में प्रकाशित हुआ है। यहां के श्रीमहावीर भगवान की यात्रा (सं० १३७५-७६ में) श्रीजिनचन्द्रसूरिजी और श्रीजिनकुशलसूरिजी (सं० १३८० में) करने का उल्लेख पाया जाता है। यह स्थान अभी हांसी के निकटवर्ती कन्नाणा या कानोड़ में से एक होना चाहिए।

अपने पद के सर्वथा योग्य[1] समझा और केवल ६ वर्ष की आयु में सं० १२०५ वैशाख शुक्ला ६ के दिन विक्रमपुर में आचार्य पद

---

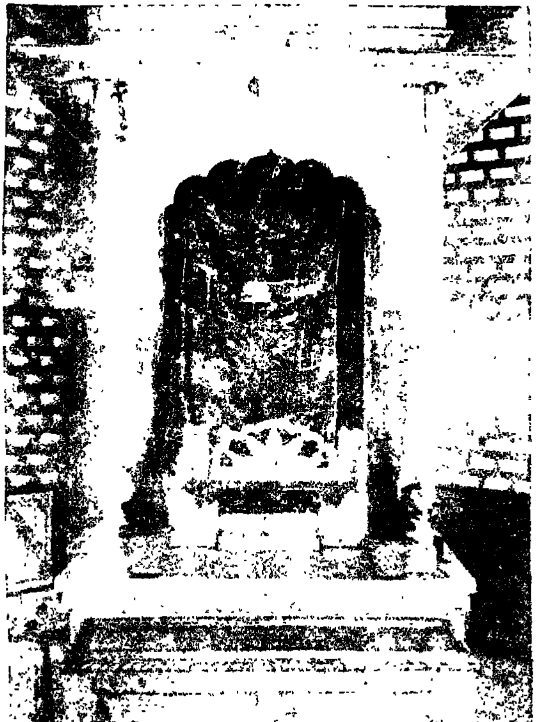
१ हमारे संग्रह की १७ वीं शती की १० पत्र की पट्टावली में लिखा है कि एक बार सेठ रामदेव ने श्रीजिनदत्तसूरिजी से पूछा कि आपकी वृद्धावस्था आ गई, आपके पट्टयोग्य शिष्य कौन है ? सूरिजी ने कहा "अभी तो कोई नहीं दिखाई देता" रामदेव ने पूछा -- अभी नहीं है तो क्या कोई स्वर्ग से आवेंगे ? पूज्यश्री ने कहा--"ऐसा ही होगा।" रामदेव ने कहा कैसे ? आपने फरमाया कि अमुक दिन देवलोक से च्युत होकर विक्रमपुर के श्रेष्ठि रासल की लघु धर्मपत्नी की कुक्षि में मेरे पट्टयोग्य जीव अवतीर्ण होगा। यह सुन कर कुछ दिनों बाद रामदेव सांढ पर चढ़ कर विक्रमपुर रासल श्रेष्ठि के घर पहुंचे। सेठ ने कुशलवार्त्ता पूछने के पश्चात् आगमन का कारण पूछा। रामदेव ने कहा --आपकी लघुभार्या को बुलाइये ! उसके आने पर रामदेव ने पट्ट पर बैठा कर कण्ठ में हार पहिना कर नमस्कार किया। रासल श्रेष्ठि के इसका कारण पूछने पर जिनदत्तसूरिजी द्वारा ज्ञात, इनकी कुक्षि में उनके पट्टयोग्य पुण्यवान् जीव के अवतीर्ण होने का हर्ष सम्वाद कह सुनाया। रासल बड़ा हर्षित हुआ और लघुभार्या का घर में बड़ा सन्मान होने लगा। समय पर पुत्रोत्पन्न हुआ उसके ६-७ वर्ष के होने पर माता-पिता ने श्रीजिनदत्तसूरिजी को शिष्य रूप में समर्पण कर दिया। अतः श्रीजिनदत्तसूरिजी ने इनकी योग्यता गर्भ में आने के पूर्व ही अपने ज्ञानबल से जान ली थी। वास्तव में ये छोटी उम्र में बड़े ही प्रतिभाशाली निकले, विशेष जानने के लिए हमारी "मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि" पुस्तक देखना चाहिए।

प्रदान कर युवराज पद से विभूषित किया। आप लघुवयस्क होने पर भी बड़े विद्वान एवं गुरुभक्त थे। श्री जिनदत्तसूरिजी ने उन्हें दिल्ली जाने पर अशुभ योग देखकर पहले से ही वहां जाने का निषेध कर दिया था। पर भवितव्यता से राजा मदनपाल के अत्यन्त आग्रहवश वे दिल्ली गये और वहीं सं० ११२३ के भा० व० १४ का स्वर्गवास हो गया। श्रीजिनदत्तसूरिजी के भविष्यज्ञान का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

आपके भक्त श्रावकों में से भी कई श्रावक श्राविकाएं जैन धर्म के विशेष अनुरागी[१] एवं जानकर थे जिनमें से कई श्रावकों के लिए सूरिजी ने ग्रन्थ[२] बनाए और कई श्रावकों

१ जेसलमेर भाण्डागारीय ताड़पत्रीय प्रति (नं० १९१) की जम्बूद्वीप-पन्नति की पुष्पिका में श्रीजिनदत्तसूरिजी के भक्त चाहड़ श्रावक और उसके वंशजों का उल्लेख है। ये चाहड़ श्रीश्रीमाल कुलके थे। इनके वंशज मोखदेव और राजसिंह के धर्मकृत्यों का वर्णन हमारी "दादा जिनकुशलसूरि" पुस्तक में देखना चाहिए। जम्बूद्वीपपन्नतिवृत्ति भी इसी राजसिंह श्रावक के लिखाई हुई है।

२ सूरप्रभोपाध्याय रचित कालस्वरूपकुलक वृत्ति के गा० २५ वीं की टीका में पाटण के सुश्रावक वाहिल के श्रीजिनदत्तसूरिजी को अपने धर्मगुरु रूप में स्वीकार करने का उल्लेख है। वृत्ति के कथनानुसार वाहिल के पुत्र यशोदेव, आभू, आसिग और संभव के शिक्षा के लिए "कालस्वरूप कुलक" रच कर सूरिजी ने भेजा था। इसी प्रकार बीठणहिण्डा (भटिंडा) निवासी किसी प्रमुख खरतर श्राविका के सन्देहनिवारणार्थ सन्देहदोलावली के रचे जाने का उल्लेख प्रबोधचन्द्र कृत वृत्ति में है। विक्रमपुर के श्रावकों को चर्चरीटिप्पनक रचकर दो बार भेजने का उल्लेख आगे आ ही चुका है।



श्रीजिनदत्तसूरिजी की स्मारक छतरी, अजमेर

ने स्वयं सूरि-महाराज के नामोल्लेख सहित रचनाएं[1] की है।

स्वर्गवास

इस तरह नाना प्रकार से शासन प्रभावना करते हुए श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज सं० १२११ में अजमेर पधारे। वहीं ज्ञानबल से अपना आयु शेष ज्ञात कर अनशन[2] आराधना द्वारा मिती आषाढ़ शुक्ला ११ के दिन स्वर्ग सिधारे। श्रावकों ने सूरि जी की अन्त्येष्टिक्रिया बड़े भक्ति भाव से की। अग्नि संस्कार के स्थान-वीसलसमुद्र के तटपर सुन्दर स्तूप बनाया गया जिसकी प्रतिष्ठा सं० १२२१ में श्री जिनचंद्रसूरिजी ने की। सं० १२३५ में जब श्री जिनपतिसूरिजी अजमेर पधारे तब वहां के श्रावकों

---

१ संवत् १२९४ में रचित चर्चरी ग्रन्थ की वृत्ति में जिनपालोपध्याय ने गा० १९ की व्याख्या में दिगम्बर भक्त अभिनव प्रबुद्ध पल्ह श्रावक का उल्लेख किया है जिसके रचित खरतर गुर्वावली षटपद (श्रीजिनदत्तसूरि स्तुति) 'अपभ्रंश काव्यत्रयी' के परिशिष्ट व हमारे सम्पादित ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित है। इसी प्रकार आप श्री के भक्त श्रावक कपूरमल कृत 'ब्रह्मचर्य परिकरणम्' हमारे 'मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि' में प्रकाशित है उसके अन्तमें—'गुरु जिणदत्त पसाया, लिहिओ कप्पूरमल्लेहिं' लिखा है।

२ सतरहवीं शती की एक पट्टावली में लिखा है कि "जिनदत्तसूरि संथारौ कीधो देव क्षुभाव्या क्षुभ्या नहीं गुरे ९ प्रश्न कीधा देवे उत्तरदीधा (गुरु क्षमाशील संवेगी नाम प्रसिद्ध)।"

ने इसका जीर्णोद्धार करवा कर स्तूप को नयनाभिराम और विशाल बनवाया।

इसी प्रकार सं० १३१० मिति वैशाख शुक्ला १३ शनिवार, स्वाति नक्षत्र में जालोर में सेठ हरिपाल कारित एवं सं १३१७ मिती वैशाख शुक्ला १० को हरिपाल कुमारपाल कारित श्रीजिनदत्तसूरि-मूर्ति की प्रतिष्ठा श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने की। सं० १३३४ मिती वैशाख वदि ५ को भीमपल्ली में, सं० १३३० वैशाख कृष्ण ६ को वरडिया ग्राम में आपश्री की मूर्तियों की प्रतिष्ठा श्रीजिन-प्रबोधसूरिजी ने की थी। इनमें से एक मूर्ति अब भी पाटण में विद्यमान है जिसका फोटो 'अपभ्रंश काव्यत्रयी' में छपा है।

सं १३८० मिति वैशाख वदि ५ के दिन पाटण में श्लाघापूर्वक योग्य श्रीजिनदत्तसूरिमूर्ति की प्रतिष्ठा श्रीजिनकुशलसूरिजी[1] ने की। इनके पश्चात् अनेकानेक गुरुमूर्तिएं और चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठाएं हुईं और अद्यावधि होती जा रही हैं। भारतवर्ष के प्रमुख नगर-ग्रामों में प्रायः सैकड़ों स्थानों में आपकी मूर्तिएं एवं चरणपादुकाएं बड़े भक्ति भाव से पूजी जाती हैं। भक्तजनों

---

१ सं० १३२१ से सं० १३८१ तक की प्रतिष्ठित मूर्त्तियों का उल्लेख गुर्वावली के आधार से किया गया है। जिसका सं० १३०५ तक का अंश जिनपालोपाध्याय रचित है और सं० १३९५ के लगभग का वर्णन तत्कालीन लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ मुनि जिनविजयजी के सम्पादन में "सिंघी जैन ग्रन्थमाला" से प्रकाशित हो रहा है। इसके महत्त्व के सम्बन्ध में हमारा लेख 'भारतीय विद्या' वर्ष १ अंक ४ में देखना चाहिए।

के मनोवाञ्छित पूर्ण करने में कल्पवृक्ष के समान श्रीजिनदत्तसूरिजी बड़े दादा साहब के नाम से जगत में प्रसिद्ध हैं।

शिष्य परम्परा

हम आगे लिख चुके हैं कि युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी के १००० शिष्य व १५०० शिष्याएं होने का उल्लेख पट्टावलियों में है। पट्टधर परम्परा के अनुसार खरतरगच्छ की जितनी भी शाखाएं विद्यमान है वे सब आप ही की शिष्य परम्परा में है। और उनके अतिरिक्त श्रीजिनदत्तसूरिजी की परम्परा के नाम से संबोधित शाखा भी अभी तक विद्यमान है, जिसका यहां परिचय कराया जाता है। इस परम्परा के यतिगण जिनभद्रसूरि शाखा की बीकानेर गद्दी के आज्ञानुवर्त्ती हैं :

श्रीजिनदत्तसूरिजी से वा० शीलचंद्र गणि तक की परम्परा के नाम अज्ञात हैं। पंद्रहवीं शताब्दी के प्रभावक आचार्य श्रीजिनभद्रसूरिजी के विद्यागुरु वा० शीलचन्द्र गणि थे। इसका उल्लेख पं० समयप्रभ गणि रचित श्रीजिनभद्रसूरि रास में इसप्रकार है:—

"शीलचन्द्र गुरु पासि, आगम लक्षण तर्क पुराण रसु,
जाणइ सवि परिमाणु।
श्री जिण शासन वर गयण, उदयउ अभिनव भाणु ॥४०॥"

इनके शिष्य वा० रत्नमूर्ति गणि के शिष्य मेरुसुन्दरोपाध्याय १६ वीं शती के पूर्वार्द्ध के सुप्रसिद्ध बालावबोधकार है। इन्होंने जनसाधारण में उपयोगी ग्रन्थों का विशेष प्रचार होने के लिए १५ ग्रन्थों की सरल भाषा-टीका बनाई। आपका गद्य

लोकभाषामें रचित प्रश्नोत्तर ग्रन्थ भी आपके शास्त्रीय ज्ञान और गुरु आम्नाय का परिचायक हैं। हमें अभी तक आपके जितने ग्रन्थों का पता चला है, उनकी सूची दी जाती है:—

(१) शीलोपदेशमाला बालावबोध (संवत् १५२५ मांडवगढ़ में श्रीमाल धनराज की अभ्यर्थना से रचित), (२) पुष्पमाला बालावबोध (सं० १५२८ पूर्व), (३) षड़ावश्यक बालावबोध (सं० १५२५ बै० सु० ५ मांडवगढ़-संघ की अभ्यर्थना से) (४) कर्पूरप्रकर बालावबोध (सं० १५३४ से पूर्व), (५) योगशास्त्र बालावबोध, (६) पंचनिग्रन्थी बालावबोध, (७) अजितशांतिबालावबोध, (८) शत्रुंजयस्तवन बाला० (सं० १५१८, इसकी प्रति भंडारकर इन्स्टीच्यूट, पूना में है), (९) भावारिवारण बाला० (१०) वृत्तरत्नाकर बाला० (वृद्धिचंद्रजी गधेया संग्रह, सरदारशहर में इसकी प्रति है), (११) संबोधसत्तरी बाला० (डूंगरजी यति भंडार जेसलमेर), (१२) श्रावक प्रतिक्रमण बाला०, (१३) कल्पप्रकरण बाला०, (१४) योगप्रकाश बाला०, (१५) अंजना सुन्दरी कथा (सिद्धक्षेत्र साहित्यमंदिर, पालीताना), (१६) प्रश्नोत्तर ग्रन्थ (महिमाभक्ति भंडार), (१७) भावारिवारण वृत्ति पत्र ६ (वृद्धिचंद्रजी भं० जेसलमेर), (१८) षष्टिशतक बाला०।

मेरुसुन्दरोपाध्याय के उपदेश से सं० १५०५ में जेसलमेर में पट्टिका स्थापित हुई जिसका लेख, नाहरजी के लेखाङ्क २१४४ में प्रकाशित है। उनके शिष्य क्षान्तिमन्दिर के शिष्य हर्षप्रिय गणि हुए जिनकी रचित शाश्वत जिनबावनी उपलब्ध है। उनके

शिष्य वा० हर्षोदय गणि के शिष्य हर्षसारजी थे। इन्होंने सम्राट अकबर की सभा में जाकर कीर्ति प्राप्त की थी। इनके शिष्य शिवनिधानोपाध्यायजी ने भी अपने पूर्वज मेरुसुन्दरोपाध्यायजी की भाँति कई उपयोगी ग्रन्थों पर भाषा-टीका बना कर उन्हें जनसाधारण के लिये सुगम बनाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया था। आपके रचित ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है :—

(१) कल्पसूत्र बाला० (सं० १६८० अमरसर, ग्रं० ६७००), (२) संग्रहणी बाला० (सं० १६८० का० सु० १३ अमरसर), (३) योगशास्त्र टबा (पत्र ३० त्रुटक, तपा भं० जेसलमेर), (४) कृष्णरुक्मिणीवेलि टबा, (५) चौमासीव्याख्यान, (६) कालिकाचार्यव्याख्यान, (७) शास्वतस्तवन बाला० (सं० १६५२ आ०ब० ४ सांभर), (८) गुणस्थान स्त० बाला० (सं० १६९२ आषाढ़ सुदि ३ सांगानेर, जीवराज पत्नी जीवादे के लिये), (६) उपदेशमाला संस्कृत पर्याय टबासह (सं० १६६० आश्विन जोधपुर, वृद्धि० भं० जेसलमेर),(१०)लघुविधिप्रपा (११)उपधानविधि,(१२)स्तवनादि।

इनके शिष्य महिमसिंह हुए जिनका अपर नाम मानकवि था। ये अच्छे विद्वान थे, इन्होंने संस्कृत हिन्दी व लोकभाषा में गद्य व पद्य साहित्यकी रचना की उसकी सूची इस प्रकार है:—

(१) मेघदूत वृत्ति (सं० १६९३), (२) कीर्तिधर सुकोशल प्रबन्ध (सं०१६७० दीवाली, पुष्करण), (३) मेताय ऋषि संबंध (सं० १६७० पुष्करण), (४) क्षुल्लककुमार चौ० (गा० १४६ पुष्करण), (५) हंसराज वच्छराज चौपई (सं० १६७५ कोटडा),

(६) अर्हद्दास प्रबन्ध (जूठापुर, मेड़ता के चोपड़ा कपूरचन्द के आग्रह से), (७) उत्तराध्ययन गीत (सं० १६७५ श्रा० ब० ८ गु०), (८) रसमञ्जरी (हिन्दी गा० १०७), (६) शिक्षा छत्तीसी, (१०) जीवविचार टबा० ।

शिवनिधानजी के दूसरे शिष्य वा० मतिसिंह के शिष्य रत्नजय थे, जिसका प्रसिद्ध नाम मनोहरजी था। फतहपुर में सं० १७६३ में बनी हुई इनकी छतरी विद्यमान है। इनके शिष्य (१) वा० दयातिलक, (२) रत्नवद्धन, (३) वा० भाग्यवद्धन थे। जिन में दयातिलकजी की निम्नोक्त कृतियाँ उपलब्ध हैं :

(१) धन्नारास सं० १७३७ कातिक), (२) विक्रमादित्य चौ०, (३) अहिछत्ता स्त० गा ४६ (४) सीमन्धर स्त० गा. ४६, (५) पञ्चमी तपाधिकारे भवदत्त भविष्या चौ० (सं० १७४४ ज्ये० शु० ११ फतहपुर, पत्र २ से १५ श्रीपूज्यजी सं०), (६) संखेश्वरपार्श्व स्त० गा० ५, (७) नेमिनाथ स्तवन गा० ६, (८) पार्श्वनाथजी के ३ स्तवनादि। इनके शिष्य दीपचन्द्र का (१) लंघनपथ्य निर्णय (२) बालतंत्र बालावबोध हिन्दीका उपलब्ध है।

रत्नजय के द्वितीय शिष्य रत्नवद्धन की ऋषभदत्त चौ० सं० १७३३ विजयादशमी, संखवाली में रचित उपलब्ध है। तृतीयशिष्य वा० भाग्यवद्धन के शिष्य लाभसमुद्र के शिष्य लाभोदय (जो सं० १७६२ में विद्यमान थे) के शिष्य लाभनिधान थे, जिनके शिष्य चैनसुखजी के (१) शतश्लाकी टबा (सं० १८२० भा० ब० १२ महेशा की आज्ञा से रत्नचन्द्र के

लिये रचित) (२) वैद्यजीवन टबा, ग्रन्थ उपलब्ध है। इनकी छतरी सं० १८६८ में फतहपुर में आपके शिष्य चिमनीरामजी ने बनवाई थी।

चैनसुखजी के दो शिष्यों का पता चला है जिनमें से चिमनीरामजी (चारित्रसमुद्र) के शिष्य ज्ञानचन्द्र, शि० गजानंद जी के शिष्य भैरवचन्द्रजी हुए जिनकी दीक्षा सं० १९३३ और स्वर्गवास सं० १९९० आसोज सु० १२ का प्रातःकाल ५। बजे हुआ। इनके शिष्य उपा० विष्णुचन्द्रजी का फतैपुर में हाल ही में स्वर्गवास हुआ है। इनके शिष्य ऋद्धिकरणजी हैं. दोनों गुरु शिष्य बड़े सज्जन और कुशल वैद्य हैं। उपर्युक्त यति ज्ञानचन्द्र जी के शिष्य ज्ञानविशालजी और उनके शिष्य जयमाणिक्य थे। चैनसुखजी के द्वितीय शिष्य बखतमलजी थे, जिनके शिष्य हरजीमल (हीरसमुद्र) के शिष्य (१) अमरचन्द्र (अमृतविशाल और (२) पद्मचन्द्र थे। अमृतविशालजी के शिष्य (१) इन्द्रकीर्ति और (२) बालचन्द्र थे। जिनके शिष्य ऋषभचन्द्र सं० १९४० तक विद्यमान थे। इन्द्रकीर्त्ति के शिष्य आगमधार शि० हुकमचंद शि० रामकुमारजी के शिष्य यति गंगाधरजी लछमनगढ़ में विद्यमान है।

आठवां प्रकरण

ग्रन्थान्तरों की विशेष बातें

श्री जिनदत्तसूरिजी से सम्बन्धित जिन घटनाओं का उल्लेख इससे पूर्व आया है उन सब का मुख्य आधार "गणधर सार्द्धशतक बृहद्वृत्ति" है, जिसे सं० १२६५ में श्रीजिनपतिसूरिजी के शिष्य पं० सुमतिगणि ने वाचनाचार्य पूर्णदेव[1] गणि और वृद्ध सम्प्रदाय से ज्ञात कर रची थी। प्रसङ्गवश जिन घटनाओं का सूक्ष्म सूचन उपर्युक्त बृहद्वृत्ति में मिलता है और जिनका विस्तार पट्टावलियों में पाया जाता है उनका भी निर्देश यथा-स्थान किया जा चुका है। अब पूर्व प्रकरणों में जिन घटनाओं का उल्लेख नहीं किया जा सका है और बृहद्वृत्ति, गुर्वावली आदि बाद के साहित्य-ग्रन्थों एवं पट्टावलियों में पाया जाता है, उनका संक्षेप में सार इस प्रकरण में दिया जा रहा है। महापुरुषों के जीवन चरित्रों में प्रायः कई अलौकिक घटनाओं का समावेश पाया जाता है जो स्वाभाविक है। उनमें से किस

१ इन्हें सं० १२१७ फाल्गुन शुक्ल १० को भीमपल्ली के वीर जिनालय में श्रीजिनपतिसूरिजी आदि के साथ मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने दीक्षा दी थी। सं० १२४५ में लवणखेटक में श्रीजिनपतिसूरिजी ने उन्हें वाचनाचार्य पद प्रदान किया था।

घटना में ऐतिहासिक तथ्य कितना है इसका निर्णय करना टेढ़ी खीर है। श्रीजिनदत्तसूरिजी के जीवनी में भी कई चमत्कारिक घटनाओं का सम्मिश्रण पाया जाता है उनके तथ्य का निर्णय विशेषज्ञों एवं पाठकों पर छोड़ कर हम यहाँ उन सारी घटनाओं का संग्रह मात्र कर देते हैं।

(१) प्रथमानुयोग पुस्तक प्राप्ति—

सूरि महाराज के ज्ञान, दर्शन चारित्रादि गुण एवं पुण्यातिशय से शासन देवता ने प्रसन्न होकर उज्जैन नगर के महाकाल प्रसाद के मध्यवर्त्ती शिलापट्ट में गुप्तरूप से रखी हुई अद्भुत प्रथमानुयोग[१] सिद्धान्त पुस्तिका सूरिजी को प्रदान की। वह पुस्तक दशपूर्वधर श्री कालिकसूरिजी रचित एवं श्रीसिद्धसेनदिवाकर द्वारा पठित[२] था। इस पुस्तक के सम्यक् परिज्ञान से सूरिजी के महान् प्रभाव की सब लोगों में प्रसिद्धि हो गई।

---

१ समवायांग सूत्र में अनुयोग दो प्रकार के कहे हैं मूल पढमाणुयोग, और गंडियाणुयोग। मूल पढमाणुयोग में अरिहंतादि के चरित्रों का वर्णन है।

२ संवत् १४९० के लगभग जयसागरोपाध्याय रचित गुरुपारतन्त्र्य वृत्ति में यह उल्लेख है। क्षमाकल्याणजी कृत पट्टावली में लिखा है कि चित्रकूट के देवगृह के वज्रस्तंभ में नाना मंत्राम्नाय की पुस्तक थी उसे सूरिजी ने मंत्रबल से ग्रहण की, इसी प्रकार उज्जैनी के महाकाल प्रासाद के स्तंभ से सिद्धसेन दिवाकर की पुस्तक (औषधि प्रयोग से) प्राप्त की।

पुण्यवान् के पग पग निधान की कहावतानुसार आपके तपोबल के प्रभाव से और भी बहुत सी विद्याएं उपलब्ध हुई ।

इस घटना का उल्लेख प्रभावकचरित्र के वृद्धवादी प्रबन्ध में सिद्धसेन-दिवाकर के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है :—

एक बार वे चित्तौड़ गये तो उनके एक विचित्र स्तंभ देखने में आया । जो न पत्थर का था, न लकड़ी का और न मट्टी का । उसे बारीकी से देखने पर वह लेपमय प्रतीत हुआ । इससे विरोधी द्रव्यों द्वारा घिस कर उन्होंने उस स्थभ में एक छिद्र किया, तो वह पुस्तकों से भरा हुआ मालूम पड़ने लगा । आचार्यश्री ने उसमें से एक पुस्तक निकाल कर उसका १ पत्र पढ़ा फिर उनके हाथ से वह पुस्तक अदृश्य देवता ने छीन ली । फिर भी उन्हे उस पत्र में लिखित स्वर्णसिद्धि योग और सरिसव स सुभट तैयार करने की विधि याद रह गई । जिसका उन्होंने देवपाल राजा को शत्रु का आक्रमण होने समय प्रयोग कर सहायता की थी ।

कालिकाचार्य के प्रथमानुयोग ग्रन्थ की रचना का उल्लेख करते हुए मुनि श्री कल्याणविजयजी उसे कथाविषयक ग्रन्थ बतलाते हैं ।

गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति में तो श्रीजिनदत्तसूरिजी को मन्त्र पुस्तक की प्राप्ति उनके विद्यागुरु श्रीहरिसिंहाचार्यजी से हुई थी, लिखा है ।

इस मन्त्र पुस्तक के सम्बन्ध में गुर्जरेश्वर महाराजा श्रीकुमारपाल के समय का उल्लेख १७ वीं शती की पट्टावलियों में इस प्रकार पाया जाता है :—

एक बार महाराजा कुमारपाल ने विक्रम की भांति अपने संवत्सर प्रवर्त्तन की इच्छा से स्वर्णसिद्धि विद्या के विषय में श्रीहेमचन्द्रसूरिजी महाराज से

(२) सोमराजादि देवों का भक्त होना—

सिन्धुदेश में आपके उपदेशों से बहुत से नवीन श्रावक बने और बहुत से श्रावकों ने चैत्यवास की अन्धपरम्परा को त्याग कर विधिमार्ग का स्वीकार किया था। एक बार उन श्रावकों ने आपसे वीनति की कि गुरु महाराज! आप जैसे प्रभावक

पूछा। उन्होंने कहा कि खरतरगच्छ वालों के पास श्रीजिनदत्तसूरिजी की वह पुस्तक है जिसे हरिभद्रसूरिजी के शिष्य बौद्धों से लाये थे. उसमें स्वर्णसिद्धि है। कुमारपाल ने इसके लिए खरतरगच्छीय श्रावकों को बुला कर पुस्तक प्राप्त की और उन्होंने बहुत से मनुष्यों की उपस्थिति में वह पुस्तक हेमचन्द्रसूरिजी को देकर खोलने की प्रार्थना की। आचार्यश्रीने उसके ऊपर "इसे न खोलना और न बांचना किन्तु भण्डार में पूजन करना" लिखा देख कर उसे नहीं खोला। आचार्यश्रीकी बहिन हेमश्री महत्तरा ने खोलने का आग्रह किया तो उन्होंने कहा कि— श्रीजिनदत्तसूरिजी ने इसे खोलना निषेध किया है अतः उनकी आज्ञा का उल्लंघन कैसे किया जाय! महत्तरा ने कहा— देखें, क्या होता है? मैं अभी खोलती हूं--यह कह कर खोलने के साथ ही वह अन्धी हो गई। अतः पुस्तक सरस्वती भंडार में रख दी गई। रात के समय वहां अग्निप्रकोप हुआ, सब पुस्तकें जल गईं। पर श्रीजिनदत्तसूरिजी की देवाधिष्ठित पुस्तक वहां से उड़ कर अदृश्य हो गई, कहा जाता है कि वह पुस्तक अब भी जेसलमेर के किले में श्रीसंभवनाथजी के मन्दिर के नीचे ताड़पत्रीय ग्रन्थभंडार में स्तंभ के अन्दर गुप्तरूप में विद्यमान है।

कल्पतरु के अनुयायी होकर भी हम लोगों की आर्थिक दशा नहीं सुधरना, शोभनीय नहीं है। अतः कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे हम लोग सुखी होकर धर्माराधन में विशेष प्रवृति कर सकें। करुणा-समुद्र सूरिजी ने कहा--मकराणा जाकर अमुक वेला में ३२ अंगुल की प्रतिमा बनवाकर लाओ! पर यह ध्यान रखना कि रास्ते में किसी के घर भोजन न करना! उसे शुभवेला में यहां स्थापित की जायगी तो सब ठीक होगा। श्रावकों ने वैसा ही किया, प्रतिमा लेकर नागौर आए वहां स्थित शांतिसूरिजी ने रात को स्वप्न में प्रतिमा प्रतिष्ठा द्वारा सिन्ध के धनसम्पन्न होने का संकेत पाकर वहां के श्रावकों को कहा कि—प्रतिमा ले जाने वाले श्रावकों को विशेष आग्रह से भोजन कराओ!" नागौरी श्रावकों ने सिन्धुदेश के श्रावकों को भोजन करने के लिए बुलाया तब पीछे से शांतिसूरिजी ने प्रतिमाकी अंजनशलाका कर दी। श्रीजिनदत्तसूरिजी के पास प्रतिमा लेकर पहुंचने पर उन्होंने उसे अंजनशलाका की हुई देख कर कहा, अरे! तुम लोगों ने क्या बालकपन[1] किया। तुम्हें धोखा हुआ है, प्रतिमा की अंजनशलाका तो मार्ग में हो गई अतः तुम्हारे लक्ष्मी प्राप्ति का मनोरथ असफल हो गया।" उन्होंने

---

१ लोकभाषा में बालक को छोरा कहते है। सूरिजी के उन्हें इस शब्द से संबोधित करने पर उनके वंशजों का गोत्र छोरिया प्रसिद्ध हुआ, जिनके घर अब भी बीकानेर में विद्यमान है।

दूसरी बार उपाय बताने का विशेष आग्रह किया। तब सूरिजी ने कहा भटनेर के महावीर प्रासाद में स्थित मणिभद्र प्रतिमा यदि तुम्हें प्राप्त हो तो मनोरथ सिद्ध हो सकता है! ऐसा सुन कर चार श्रावक वहां गए और मौका पाकर प्रतिमा ले रवाना हुए। भटनेर वालों के पीछा करने पर उन्होंने प्रतिमा को पंचनदी में विसर्जन कर दी। सूरिजी ने इस घटना को जानकर प्रतिमा विसर्जन के स्थान पर जाकर मणिभद्र का स्मरण किया। उसने प्रत्यक्ष होकर कहा—अब मैं बाहर नहीं निकलूंगा, यहीं पर रहा हुआ सान्निध्य करूंगा! उसने सूरिजी को पूर्व उल्लिखित ७ वर दिये जिनमें पहला सिन्धुमण्डल में प्रति ग्राम में १ श्रावक विशेष समृद्धिशाली और अन्यों के सर्वथा निर्धन न होने का वर था।

इसी प्रकार तीन अन्य पीर[1] भी सूरिजी के भक्त थे। उनके देव होने के अनन्तर उन्हें पंचनदी पर निवास करने को कहा गया। देरावर के स्वामी का सेवक सोमराज आपश्री का परम भक्त था। वह लड़ाई में काम आने पर देव हुआ, सूरिजी ने उसे भी पंचनदी में रहने का स्थान बतलाया। इस

१ पट्टावलियों में लिखा है कि सुलेमान पर्वत का अधिष्ठाता खोडिया क्षेत्रपाल भी इन पीरों में आ मिला और उसकी भी पूजा इनके साथ होने लगी।

श्रीजिनसमुद्रसूरिजी एवं अकबर प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने पंचनदी साधन की थी। हमारे संग्रह में पंचनदी साधनविधि की नकल है।

प्रकार पंचनदी में सूरिजी के पाँचों भक्त देव रहने लगे। श्रावक लोगों ने उन्हें नैवेद्यादि से सन्तुष्ट किया। इसी प्रकार ५२ वीर आदि अनेक देव आपश्री के भक्त हो गए।

(३) देरावर के स्वामी का भक्त होना—

एक बार देरावर के स्वामी बड़े निर्धन हो गए, तब साधुओं की भक्ति में सूरिजी के पास रहने लगे। आपकी सेवा से गुरु महाराज की कृपा हुई और सब तरह से सम्पन्न होकर देरावर का किला बनाया।

(४) अजमेर में विद्युत् स्थंभन—

एक बार सूरिमहाराज अजमेर पधारे। वहां सन्ध्या प्रतिक्रमण के समय बिजली गिरी, तो आपश्री ने तत्काल स्तंभित कर दी। श्रीमदक्षमाकल्याणजी की पट्टावली में लिखा है कि सूरिजी ने बिजली को काष्ठ पात्र के नीचे दबा दी और प्रतिक्रमण के अन्तर उसे विसर्जित की। उसने (विद्युत् अधिष्ठात्री देवी ने) सूरिजी के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि—"आपकी दुहाई देने पर विद्युत पात न होगा!"

(५) मुल्तान का हाथी श्रावक—

एक बार सूरिमहाराज मुलतान पधारे। वहां लूणिया गोत्रीय हाथी श्रावक आपका परमभक्त था। सूरिजी के धर्मलाभादि शब्दों से उसे विशेष सम्मानित करते हुए देखकर दूसरे श्रावकों ने कहा—इस साधारण व्यक्ति को इतना आदर देने का क्या

कारण है ? सूरिजीने कहा —महानुभावो ! हाथी तो राजद्वार में शोभता है, इसका नाम हाथी है, अवसर आनेपर इससे बहुत काम निकलने की संभावना है !" उस समय वहां कँवला[1] गच्छीय संघ धनवान एवं बहुसंख्यक था। उन्होंने वहां खरतर गच्छ का प्रसार व उन्नति होते देखकर इर्ष्यावश वहां के अधिपति नवाब को प्रलोभन देकर खरतरगच्छ वालों को विशेष हानि पहुंचाने के हेतु प्रस्तुत किया। अधिपति ने पूछा कि खरतर कौन और दूसरे कौन यह कैसे जाना जाय ? उन्होंने कहा—कंवलागच्छीय लोग तिलक धारण करके आवेंगे, तिलक वर्जित खरतर समझें ! विश्वस्त सूत्र से हाथीसाह और सूरिजी को इसका पता लगा। हाथीसाह ने बीबी के पास जो उसकी धर्मबहिन थी- जाकर सारा वृतान्त निवेदन किया और कहा कि हमारा मरण निकट है ! बीबीने उसे आश्वासन देते हुए नवाब से कहकर संकेत उलटा दिया। अपना पासा उलटा देखकर वे लोग अपना तिलक पोंछ कर हाथी के अनुकरण में खरतर गच्छीय हो गये। गुरुमहाराज ने कृपा करके प्रतिक्रमण में 'अजितशांति' पढ़ने का आदेश हाथीसाह को दिया। इसी प्रकार पट्टावलियों में बोथरों को 'जयतिहुअण' और मेड़ता के गणधर चापड़ों को 'उवसग्गहर पढ़ने का आदेश दिया लिखा है।

१ शिथिलाचार वालों के लिए ढीला-कोमल कंवला शब्द का प्रयोग हुआ है यह शब्द उपकेशगच्छ वालों के लिए रूढ़ है। जयसागरोपाध्याय ने अपनी "विज्ञप्तित्रिवेणी" में इन्हें मृदुपक्षीय नाम से संबोधित किया है। 'उपकेशगच्छ चरित्र' आदि से भी उस समय सिंध में इस गच्छका अच्छा प्रभाव मालूम होता है।

(६) पाटण का ईर्ष्यालु अम्बड़

किसी समय मुलतान में सूरिमहाराज का प्रवेशोत्सव बड़े धूमधाम से होता देखकर पाटण से व्यापार के निमित्त आए हुए अन्य गच्छीय अंबड़ ने सूरिजी से कहा—ऐसा प्रवेशोत्सव पाटण में हो तो मैं आपका प्रभाव समझूं ! सूरिजी ने कहा—देवगुरु के प्रसाद से वहां भी ऐसा ही होगा पर उस समय तुम मस्तक पर पोटली लिए हुए सन्मुख मिलोगे ! धर्मप्रचार करते हुए सूरिजी का पाटण पधारना हुआ। अंबड़ उन्हें उसी अवस्था में मिला. वह बड़ा लज्जित हुआ और मन में द्वेष रखता हुआ बाहर से बड़ा भक्त बन गया। एक बार तपस्या के पारणे के दिन अतिथि संविभाग के बहाने सूरिजी के शिष्यों को वीनति कर विषमिश्रित शकर का जल बहरा दिया। गुरु महाराज को उसे थोड़ा ग्रहण करते ही वह विषाक्त ज्ञात हुआ। भणसाली आभू नामक भक्त श्रावक को ज्ञात होने पर उसने तत्काल अपनी शीघ्रगामिनी सांढ़ पर पालनपुर से निर्विष मुद्रिका या विषापहारी रसकुंपक मंगाकर विष का असर दूर किया। अंबड़ के इस जघन्य कृत्य से उसकी सर्वत्र निन्दा हुई और वह द्वेष धारण करता हुआ कुछ दिन बाद मरकर व्यन्तर हुआ। मौका देखकर एक समय रात को गुरु महाराज का सप्रभाव रजोहरण नीचे गिरा दिया और उपद्रव करने लगा। इस व्यन्तरोपद्रव को दूर करने के लिये आभू श्रावक के आत्मभोग देना स्वीकार करने पर व्यन्तरोपद्रव दूर हो

गया। गुरु महाराज ने स्वस्थ होकर व्यन्तर को वश में कर लिया जिससे भणशाली आभू के कुटुंब की रक्षा हुई।

(७) मुल्लापुत्र को जीवनदान

एक बार उच्चनगर में सूरिमहाराज का प्रवेशोत्सव बड़े समारोह के साथ हुआ। जनता की असंख्य भीड़ के कारण एक ७ वर्ष का मुल्ले[1] का पुत्र व्याकुल होकर मर गया। म्लेच्छ लोगों ने हल्ला गुल्ला करके शोर मचाना शुरू किया और वे जैनों पर विविध आरोप लगाने लगे। पूज्यश्री ने शासन प्रभावना के लिए मृतक बच्चे के शरीर में व्यन्तर प्रवेश करा के उसे जीवित कर दिया। इससे प्रभावित होकर गुरु महाराज के उपदेशानुसार म्लेच्छ कुटुंबों ने मांसभक्षण का त्याग किया।

(८) ७०० शिष्याओं को गुरुणी

एक बार सूरिमहाराज नारनौल[2] पधारे। वहां श्रीमाल श्रावक के जॅवाई का विवाह के समय शरीरान्त हो गया। लोगों ने कन्या को उसके साथ चिताप्रवेश करने के लिए मजबूर किया।

१ कई पट्टावलियों में ब्राह्मण और कइयों में मुगलपूत लिखा है पर उस जमाने में मुगलों का आगमन ही नहीं हुआ था। हां, मुसलमानों का सिन्ध में प्रवेश ८ वीं शताब्दी में हो गया था।

२ कई पट्टावलियों में झूंझणु लिखा है पर मुहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार झूंझणु को सं० १३५० के आसपास झूंझा जाट के नाम से कायमखान ने बसाया था। झूंझणु का सब से प्राचीन उल्लेख सं० १३७५ का गुर्वावली में पाया जाता है।

वह जलती हुई चिता की भयंकरता से भयभीत होकर गुरु महाराज के चरणों में आई। सूरिजी ने उसके पिता को समझा कर कन्याको धर्मध्यान में प्रवृत किया और वहां स्थित कंवला गच्छीय साध्वी को उसे पढ़ाने के लिए सुपुर्द किया। उसके आवश्यक अध्ययन हो जाने पर गुरु महाराज ने दीक्षित कर साध्वी बनाई। एक बार उसके मस्तक में बहुत जूंऐं पड़ी देख कर अन्य साध्वी ने गुरु महाराज से कहा, गुरु महाराज ने अपने निमित्तज्ञान से कहा कि इसके मस्तक में जितनी जुंऐं हैं उतनी ही शिष्याएं होगी। वे जुंऐं निकाल कर गिनती करने पर ७०० हुईं। आगे चल कर विक्रमपुर में उसके ७०० शिष्याएं हुई और गुरु महाराजकी भविष्यवाणी सत्य हुई।

(६) परकाय प्रवेशिनी विद्या—

सूरिमहाराज बड़नगर पधारे, वहां के ब्राह्मण जैनों से बड़ा द्वेष रखते थे। एक बार मरणासन्न गाय जैन मन्दिर के अहाते में प्रवेश कर मर गई। ब्राह्मणों ने मौका पा कर जैनों के विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया कि—जैनदेव गौघातक है। जैनशासन के इस अपवाद को दूर करने के लिए श्रावकों के आग्रह से सूरिजी ने परकायप्रवेशिनी विद्या द्वारा गाय को जीवित कर दिया। वह गाय स्वतः उठ कर शिवालय में शिव की पिण्डी के सन्मुख जा गिरी। ब्राह्मण लोग गाय को अपने मन्दिर में मरी हुई देखकर बड़े लज्जित हुए और इस असाधारण कार्य से प्रभावित हो कर विनीत भाव से गुरु महाराज को प्रार्थना

का कि — हमारे अपराधको क्षमा कीजिये ! हम आपकी शरण में आये हैं, हमारे इस अपवाद को दूर कीजिये ! सूरिजी ने कृपा कर उस गायको पुनर्जीवित कर दी। वहां से वह उठकर अन्यत्र चली गई। ब्राह्मणों ने प्रतिज्ञा की कि खरतरगच्छाचार्यों के बड़नगर पधारने पर हम लोग प्रवेशोत्सव करेंगे[१]। प्रकाशित जिनदत्तसूरि चरित्र में लिखा है कि ब्राह्मण गुरु महाराज के उपदेश से जैन होकर मन्दिरों में गायन, वाद्यादि प्रभुभक्ति करने लगे, वे लोग गन्धर्व कहलाए और मन्दिर के प्रमार्जनादि सेवा कार्य करने वाले सेवक या भोजक कहलाये।

(१०) व्याख्यान श्रवणार्थ देवों का आगमन।

किसी नगर में गुरुमहाराज व्याख्यान के समय बीच बीच में धर्मलाभ दे रहे थे। श्रावकों ने सविस्मय पूछा, किसी नए श्रावक के न आने पर भी गुरुदेव किसे धर्मलाभ दे रहे हैं? सूरिजी ने उन्हें अपना वासक्षेप देकर व्याख्यान श्रवणार्थ आते हुए अनेक देवोंको दिखलाया। तब श्रावकों ने जाना कि संख्याबद्ध देव आ रहे हैं, धर्मलाभ तो थोड़ों का ही दिया गया है।

(११) राठाड़ाधिपति सीहाजी पर कृपा।

ज्ञानहर्ष रचित जिनदत्तसूरि अवदात छप्पय[२] आदि में

१ प्रभावकचरित्र के कथनानुसार यह घटना वायड़ गच्छीय जीवदेवसूरि से सम्बन्धित है। वायड़गच्छीय पं० अमरचन्द्र रचित बालभारत एवं पद्मानन्दकाव्यप्रशस्ति एवं राजशेखरसूरि रचित प्रबन्धकोष में भी यह घटना जीवदेवसूरि सम्बन्धित लिखी है।

२ देखें हमारे सम्पादित "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह"।

लिखा है कि सूरिजी की कृपा से राठौड़ सींहोजी मारवाड़ में राज्य स्थापना करने में सफल हुए थे। इसी कारण राठोड़ नृपति तब से आज तक खरतरगच्छाचार्यों को अपना गुरु मानकर बहु मान करते आए हैं। 'राठौड़वंशावली' में इसका विशेष वर्णन करते हुए लिखा है कि—

"गुरु खरतर प्रोहित सिवड़, रोहड़ियो बारहट्ट
मांगणहारा देवड़ो, राठउड़ा कुलवट्ट ॥ १ ॥"

इतिहास के अनुसार सींहोजी का समय सूरिजी के समकालीन नहीं है अतः सम्भव है कि स्वर्गवासी गुरुदेव ने देवरूप में उन्हें सहायता की हो। जिस प्रकार बीकानेर नरेश सुजाण सिंहजी को स्वर्गीय दादा श्रीजिनकुशलसूरिजी ने शत्रुओं के सङ्कट से मुक्त कर सहायता की थी उसी प्रकार श्रीजिनदत्त सूरिजी की भक्ति से सिंहोजी को सफलता मिली होगी।

इनके अतिरिक्त पट्टावलियां व प्रकाशित चरित्रोंमें भक्त श्रावक की डूबती हुई नौका को तिराना, जलतरणी कंबल पर बैठ कर पञ्चनदी पार होना आदि बातों का उल्लेख पाया जाता है।

'युगप्रधानगंडिका' में श्रीजिनदत्तसूरिजी का नाम युगप्रधानों की नामावली में आता है एवं सूरिजी के एकाभव अवतारी होने का उल्लेख भी कई चरित्रों में आता है। महो० रामलालजी रचित दादासाहब की पूजा और 'महाजन वंश मुक्तावली' में सूरिजी के सम्बन्धित कई अन्य बातों का भी उल्लेख है पर उनके संबंध में हमें अभीतक विशेष अन्वेषण आवश्यक प्रतीत होता है।

परिशिष्ट नं० १

श्री जिनदत्तसूरि प्रतिबोधित गोत्र सूची

श्रीसुधर्मसामि परम्परा खरतर गच्छ ना भट्टारक जंगमयुग प्रधान श्रीजिनदत्तसूरि प्रतिबोधित छत्तीस राजकुली सवालाख श्रावक खरतर, तेहना गोत्र लिख······

१ श्री राय भणसाली मंत्रि आभू साखि गोत्रबद्ध खरतर सालंकी राजपूत।

२ षह भणसाली गोत्रबद्ध खरतर देवड़ा रजपूत।

३ कांकरिया गोत्र खरतर भाटी रजपूत।

४ करमदिया बद्ध गोत्र खरतर। आकोल्या अड़क खरतर।

५ मणहड़ा गोत्रबद्ध खरतर श्रीपन्ना अड़क खरतरः।

६ नवलखा दसम री दीहाड़ी वाला गोत्रबद्ध खरतर साहणो साह थी।

७ छाजहड़ दसमरी दिहाड़ी वाला गोत्रबद्ध खरतर सं० १२४५ राठोड़ धांधलो धरण साह थी खरतर।

८ प्राह्मेचा दसमरी दिहाड़ी वाला खरतर पमार रजपूत।

९ सावंसखा बद्ध गोत्र खरतर।

१० डांगी गोत्र मध्ये काजलोत सर्व खरतर।

११ रांका, सेठिया तथा काला सर्व खरतर।

१२ खुथड़ा कुहाल गोत्रबद्ध खरतर।

१३ कूकड़ चोपड़ा गोत्रबद्ध खरतर जाति पड़िहार रजपूत मंडोवरा को० राव चूडा कहाणा।

१४ गणधर चोपड़ा गोत्र खरतर जाति कायथ हिंसारी गण कहाणा।

१५ पीतलिया गोत्रबद्ध खरतर दसमि नी दिहाड़ी माने ते खर०।

१६ कान्हवगा गोत्रबद्ध खरतर।

१७ गुंदवछा मुं० दसम नी दिहाडी माने ते गोत्र खरतर।

१८ वैताला बद्ध गोत्र खरतर।

१९ नाहटा तथा बापणा पूहल ते सर्व १० दिहाड़ी करे। तेरं १३ साखि ते खरतर।

२० सोनिगरा दसमनी दिहाड़ी वाला खरतर।

२१ बाहिथरा दोनुं भाई गोत्रबद्ध खरतर देवड़ा रजपूत राव सामंतसी केड़ सोनगर बास।

२२ कुचा गोत्र बद्ध खरतर। सांभतिया अड़क खरतर।

२३ वेद बोहड़ वर्द्धमान शाखाबद्ध खरतर सेवड़िया

२४ संखवालेचा खरतर कोचर संघवी ना केड़ ना खरतर गोत्रबद्ध।

२५ माल्हू गोत्रबद्ध खरतर पमार जाति प्रल्ह राजा रजपूत चउहाण २ मल्हाला अड़क फोफलिया।

२६ लोढा १० दिहाड़ी वाळा खरतर राग १। कट्ठ २॥

२७ वरढिया मध्ये दरड़ाबद्ध खरतर।

२८ चण्डालिया गोत्र दसमरी दिहाड़ी करै ते खरतर।

२९ आयरिया गोत्रबद्ध खरतर।

३० ढोंक बद्ध गोत्र खरतर।

३१ सीमांदिया नहुलाई वाला खरतर।

३२ डांगरेचा बद्ध गोत्र खरतर।

३३ फसला गोत्रबद्ध खरतर।

३४ सिंधुड खरतर साउंसखे मिले।

३५ भाटिया गोत्र खरतर।

३६ सानो गोत्रअड़क खरतर।

३७ पंच कुहाल वहुरा गोत्रबद्ध खरतर।

३८ नवकुहाल वहुरा गोत्रबद्ध खरतर।

३९ भेतड़ा गोत्र खरतर।

४० महतीयाण लघुशाखा ऊकेश खरतर।

४१ खांटहड़ दसमरी दिहाड़ी वाला खरतर।

४२ माधवाणी गोत्र मदारिया मध्ये खरतर।

४३ राखड़िया वहरा गोत्र कटारिया खरतर। देवलवाड़ा मध्ये

४४ लूणिया गोत्रबद्ध खरतर जाति मंधड़ा महेसरी।

४५ डागा खरतर मंधड़ा जाति महेसरी।

४६ भाभू १ पारिख २ झांहरिया ३ गदहिया ४ सेलुत ५ भूरा ६ रीहड़ ७ खरतर राठो महेसरी।

४७ खुथड़ा १ मालबीया २ डागलिया ३ चम्म गोलवछा ५ बलाही ६ बापणा ७ दसमरी दिहाड़ी खरतर।

४८ जांगड़ा गोत्र खरतर। बुबकिया गोत्र खरतर।

४९ मगदिया १ धाड़ीवाहा २ वेद ३ दोसी ४, दरड़ा गोत्र खरतर महेसरी।

५० काठोफाड़ा खरतर।

५१ पोरवाड़ पांचाइणिया गोत्र खरतर।

५२ अथ सखा गोत्र मांहि इतरा मिलै :—

बुच्चा १ चम्म २ कक्कड़ ३ गादहिया ४ गोलवछा ५ पारिख ६ भटाकिया ७ नाव......८ बुबकिया ९ चोरवेड़िया १० सेल्होत ११ खुथड़ा इतरा १२ गोत्र।

[पत्र १ हमारे संग्रह में]

[श्रीपूज्यों के दफ्तर एवं फुटकर पत्रों व बहियों में एतद् विषयक बहुत सी सामग्री मिलती है। नमूने के तौर पर यह एक पत्र दिया गया है स्वतंत्र शोध करने से बहुत से नवीन तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं]

परिशिष्ट नं० २

श्रीजिनदत्तसूरि रचित अप्रकाशित ग्रन्थ

(१) उपदेश कुलकम्

वंदिय दियसत्तभयं, भयवं तं वद्धमाणमसमाणं ।
वोच्छं जुगपवरागम, गुरुपरिमाणं सरूवं च ॥ १ ॥
सव्वंग मूलमंगं, आयारो तत्थ जुगपहाणाणं ।
अभिहाणरूवचरियाइ, कित्तणं वत्तमं कहिंसु ॥ २ ॥
अप्पडिम केवलुप्पत्ति, समय समणंतरं जिणासव्वे ।
पवयण वुड्ढि निमित्तं, दुवालसंगं निदंसंति ॥ ३ ॥
तमिहत्थओ तयं गणहराविं गंथंति सुत्तओसव्वं ।
पुव्वापराविरुद्धं मपक्खदिट्ठंत हेउजुयं ॥ ४ ॥
बत्तीस दोस रहियं, रहियं आसन्न सिद्धिहिययंमि ।
परम पय साहगं, बाहगं भव्वाहिवाहीणं ॥ ५ ॥
अट्ठारसपयसहस्सोवसोहिएपवरपंच चूलिमा ।
पढमंगे से से सु पयसंखा दुगुण दुगुणाओ ॥ ६ ॥
पयसंखा न विभत्तीए किन्तु मा अत्थपरिसमत्तीए ।
अंगोवंगाइसु गंथेसु निदंसिया समए ॥ ७ ॥
हुँडावसप्पिणी दूसमत्थ भसमुग्गगहवमगयाणं ।
साहूणं सुहमहसइ बलाइहाणी समुप्पण्णा ॥ ८ ॥
आयाराइ अंग पयच्छेओ, तो दुहावि संजाओ ।
सीयंत चरण करणा, विरला दीसंति मग्गठिया ॥ ९ ॥

र (स) ढ्ढंतंच कुणंता, रद्धंतं सव्वहा न पेच्छंति ।
लग्गंति सावयाणं, मग्गे भक्खत्थिणो एगे ॥ १ ॥
इत्थंति (नि) य कायवह वयं विणामति सुयमविनिहंति ।
परलोय घायगाणिय, सिक्खंति सयावि सत्थाणि ॥ ११ ॥
बारस वास सएहिं सड्ढेहिं निव्वुयंमि वीरम्मि ।
चेइय-मढ आवासो, पकप्पिओ सायसीलेहिं ॥ १२ ॥
अन्नेउ अहच्छंदा, गिहि गिहिवासेवि हुंति समइ वसा ।
गीयत्थाणावज्भा, दुक्कर किरिया रया निच्चं ॥ १३ ॥
संकिय सुत्तत्थ वियार, कारया पारतंतविहि रहिया ।
सपरेसिं हुंति जमसंख दुक्ख लक्खाण संजणया ॥ १४ ॥
चीवासिणुव्वसच्छंद चारिणोऽसुत्त भासिणोवि इमे ।
होंति हा ! ऽभिग्गह मिच्छदिट्ठिणो चरणगुणहीणा ॥ १५ ॥
सड्ढेहिं गुणड्ढेहिं, साहूहिं सुद्धदंसणत्थेहिं ।
अहमाहमत्ति नाउं, दट्ठव्वा ते न पुट्ठव्वा ॥ १६ ॥
एत्तो विहु पावयारो अन्नो नो विजए जए कोवि ।
रिसि-माहण-गो-भ्रूणंतगोवि बहुपाव कारी वि ॥ १७ ॥
अयराणं कोडाकोडिं, भमिओमरिइ भवम्मि जं भीमे ।
उस्सूत्त लेस देसण-जणिओ सो खलु कडुविवागो ॥ १८ ॥
इत्थंचायरियाणं, पणपण्णं हुंति कोडिलक्खाओ ।
कोडिसहस्से कोडिसयए तह इत्तिए चेव ॥ १९ ॥

एएसिं मज्झाओ एगे निव्वडइ गुणगणाइण्णे ।
सव्वुत्तम भंगेणं, तित्थयरस्साणुसरिमगुरू ॥ २० ॥
दुप्पसहो जा साहू, होहिंति जुगप्पहाण आयरिया ।
अज्ज सुहम्मप्पभिई, चउरहिया दुन्निओ सहस्सा ॥ २१ ॥
सोचेवणाय मोदय, वयण सूरित्थ (ग) णोऽवसेसाइं (सेण) ।
तं तह आराहेज्जा, जह तित्थयरेय चउव्वीसं ॥ २२ ॥
अणुसोयवत्ता (त्ता) एणं, पडिसोएणं तु वहए सम्मं !
गड्डुरिपवाहपडिए, तिविहं तिविहेण वज्जेइ ॥ २३ ॥
सव्वं पिहु करणिज्जं करेज्ज सिद्धंत हेउजुत्तिहिं ।
जं नवि भज्जइ सिज्झइ, पाएणविणावि संदेहं ॥ २४ ॥
खाइग सम्मद्दिट्ठिं, जुगप्पहाणागमं च दुप्पसहं ।
दसवेयालिय कहिगं, जिणं व पूएज्ज तियसवई ॥२५ ॥
एवं निय निय काले, जुगप्पहाणो जिणव्व दट्ठव्वो ।
सुविणेवि झाणसोयं, मन्नइ पडिसोय गामीय ॥२६॥
आगम आयरणा सम्मएण, मग्गेण संपरंच फुडं ।
जो नेइ सया नय राग-दोस मोहाण वसवत्ती ॥२७॥
सगुण गुरु पारतंत, समुव्वहंतो विहिं परूवेइ ।
विसयं वियाणमाणो, सम्माणइ गुणजुयं संघं ॥ २८ ॥
गुणिगुरुजणप्पणीयं, पहं कहिंतो नेव बीहइ परेसिं ।
जणणी जणगाईणं सयापि सद्धम्म वज्झाणं ॥ २९ ॥

फुड पागडं पन्नवइ, जिण गणहर भासियं च सद्दहइ ।
दहइ कुसामग्गीतरुं, तरुणो गुणाहि वुड्ढव्व ॥ ३० ॥
सोमो महुरालावी, भयमुक्का सव्वहावि निकलंको ।
निच्चं परोवयारी, पवयण परिवुड्ढिकारी य ॥ ३१ ॥
मत्तंपि वाइतिमिरं, पणस्सइ जम्मि विज्जमाणम्मि ।
तत्थट्ठियं पि सद्दिट्ठि-वाहगं हवइ न कयावि ॥३२॥
सूरम्मि व सूरिम्मिय, अत्थमिए तममियं व विप्फुरइ ।
बहु तारए पयासइ नासए विज्जंत मविमग्गं ॥ ३३ ॥
इय जिणदत्त सुमुत्तिमग्गा देसीण जुगप्पहाणाणं ।
स मरूवं परिमाणं, महानिमीहाओ भणिय मिणं ॥३४॥

२ पद्धतिप्रकरणम्

(जिनदत्तसूरिभणितः जिनपालोपाध्याय लिखित)

अर्हं ॥ श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य गच्छाधिपतेः पञ्चशब्द वादनादिना प्रवेशः क्रियते । निउंछणंच क्रियते । मङ्गलकलशः सन्मुखं आगच्छति । दीपिकापञ्चकोत्तारणं न क्रियते । व्याख्याने कृते सति श्राविका गीत गायन्ति। इति संक्षेपेण श्रीयुगप्रधानाचार्यस्य प्रतिपत्तिविधिः ॥छ॥

द्वितीयस्थानीय एवा सामान्याचार्यस्य नगर प्रवेशे चतुर्विध संघः सन्मुख आगच्छति। संखो वाद्यते। श्राविकाश्च गीतं गायन्ति। वादित्र न वाद्यते। छत्रं सन्मुखं नागच्छति मङ्गलकलशः सन्मुखो ना गच्छति। निउछणंच न क्रियते। प्रतिलाभनाया उपवेशनं

भूमो दीयते न चतुष्किकायाँ। पट्टवस्त्रादिस्संबकबन क्रियते। प्रतिलाभनायां गृह प्रवेशे पटानप्रक्षिप्यन्ते ॥ इति संक्षेपेण श्रीसामान्यार्यस्य प्रतिपत्तिविधिः।

श्रीउपाध्यायस्य पुनर्नगर प्रवेशे साधवः श्रावकाश्च सन्मुखा आगच्छन्ति। साध्वी श्राविकाः सन्मुखा अपि नागच्छंति। शंखो न वाद्यते देवगृह प्रवेशे श्राविका गीतं न गायन्ति शंखो न वाद्यते। उपाध्यायेन व्याख्यानेकृते सति श्राविका गीतं न गायन्ति। निउंछणं कदाचिन्न क्रियते। उपाध्यायस्य प्रतिलाभनायां उपवेशनं भूमो दीयते। न चतुष्किकादौ। शंखा वाद्यते श्राविकाश्च गीतं गायन्ति उपाध्यायस्य पाक्षिक प्रतिक्रमणे वाहिका न दीयते। उपाध्यायस्य मङ्गलकलशो वादित्रं च क्वापि नास्ति। उपाध्यायस्य पृष्टिपट्टः कंबलिका वस्त्रादि रहितः कंबलो दीयन्ते। इति संक्षेपेण श्रीउपाध्यायस्य प्रतिपत्तिविधिः ॥छ॥

वाचनाचार्यस्यापि नगर प्रवेशे साधवः श्रावकाश्च संक्षेपेण सन्मुखाआगच्छन्ति शंखा न वाद्यते। साध्वी श्राविकाः सम्मुखा अपि नागच्छन्ति। निउंछणं च क्वापि न क्रियते। मस्तके कर्पूरक्षेपो न क्रियते। वाचानार्येण व्याख्याने कृते सति श्राविका गीतं न गायन्ति देवगृह प्रवेशे शंखा न वाद्यते। श्राविकाश्च गीतं न गायन्ति। यदि वाचनाचार्य सकाशात् वृहत्तरः साधुर्भवति तदा...(वृ) हत्तर साधुः प्रथमं वंद्यन्ते। क्षाम्यतेव। लेखमध्ये प्रथम वृहत्तरसाधुनाम लिख्यते ॥ लेखे पुनः सं···सविलेखोपरि वाचनाचार्य नामएकंदीयते इति वाचनाचार्यस्य संक्षपेण प्रतिपत्तिविधिः ॥छ॥

आचार्योपाध्याय वाचनाचार्याणां त्रयाणामपि चंदवेपरि-पाट्यै शंखोवाद्यते। श्राविकाश्च गीतं गायन्ति। तथा श्री आचार्यस्य कंबलक त्रयं श्रीउपाध्यायस्य कंबलकद्वयं वाचना-चार्यस्य एकः कंबलो दीयते। इति उपवेशन विधिः ॥छ॥

तथा महत्तराया नगर प्रवेशे श्राविकाः केवलाः सन्मुखा आगच्छन्ति। शंखो न वाद्यते। श्रावका नागच्छन्ति। श्राविका गीतं न गायन्ति। मङ्गलकलशा नागच्छति देवगृह प्रवेशे गीतसंख निउछणादिकं किमपि न क्रियते। कर्पूरक्षेपः क्रियते पृष्टे पट्टे कंवलिका वस्त्र च दीयते उपवेशाने कम्बल द्वय दीयन्ते। प्रवर्त्तन्याः पुनर्मस्तके कर्पूरक्षेपो न क्रियते पृष्टि पट्टे लघुः कंवलिकादि रहितः क्रियते उपवेशने एकः कंबलो दीयते। इति महत्तरा प्रवर्त्तन्या संक्षेपेण प्रतिपत्तिः विधि ।।छ॥

इति नवांगवृत्तिकारक श्रीअभयदेवसूरि आम्नाये श्रीजिनव-ल्लभसूरि पट्टोद्योतकैः श्रीजिनदत्तसूरिभिर्यः पदस्थानां विधिर्भणितः। स श्रीजिनपतिसूरीणां उपदेशेन तेषां शिष्यैः श्रीजिनपालोपाध्यायैः टिप्पनके लिखितः अनेन विधिना प्रवर्त्तमानस्य सकलसंघस्य सवभव्यंभविष्यति ॥ इदं श्रीजिनपालोपाध्याय लिखित टिप्पनकात् लिखितं। शुभंभवतुलेखकपाठकयोः ॥छ॥

सुगुरु गुण संथव सत्तरिया

(गणधर सप्ततिका*)

गुण मणि रोहण गिरिणो रिसहजिणंदस्स पढम मुणि वइणो
सिरिउसभसेण गणहारिणोऽणहे पणिवयामि पए ॥ १ ॥

अजियाइ जिणंदाणं जणिआणंदाण पणय पाणीणं
थुणिमो दीण मणोहं गणहारीणं गुरुगणोहं ॥ २ ॥

सिरि वद्धमाण वरनाण चरण दंसण मणीण जल निहिणो
तिहुयण पहुणो पडिहणिय सत्तुणो सत्तमो सीसो ॥ ३ ॥

---

* यह कृति जेसलमेर के वृहद् ज्ञानभंडारस्थ ताड़ पत्रीय प्रति से श्री हरिसागरसूरिजी के की हुई नकल के आधार से प्रकाशित की जाती है। इसकी एक अन्य प्रति थाहरूसाह के भंडार (जेसलमेर) में भी प्राप्त हुई थी, जो कपड़े पर टिप्पणकाकार में थाहरू साह के लिए लिखी हुई थी। उपर्युक्त ताड़पत्रीय प्रति से इस प्रति का पाठ बहुत भिन्नता रखता है, कहीं कहीं तो गाथाएं भी सर्वथा भिन्न हैं, गाथाओं का क्रम भी अस्त-व्यस्त है इसलिए हम प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति को ही प्रामाणिक समझते हुए उसीके पाठ को प्रकाशित करते हैं।

सुयनाण जस्सपईव सन्निहं हसिय हंसकर पसरं
विप्फुरइ जणमणो गिहसंलय तिमिर हरणंमि ॥ ४ ॥
जंति तिरिय मणुय दाणव देविंद नमंसियं महासत्तं
तं नाण सिरि निहाणं गोयम गणहारिणं वंदे ॥ ५ ॥
जिण वद्धमाण मुणिवइ समप्पिया सेसतित्थभरधरणे
पडिहय पडियक्खेपं जयंमि धवलाइयं जेण ॥ ६ ॥
तं तिहुयण पणय पयारविंद मुद्दाम काम करिसरहं ।
अणहं सुहम्म सामि पंचम ठाणं ठियं वंदे ॥ ७ ॥
जस्सन्न तारुण्णे तरल तारय हत्थिपेच्छिरीहिंपि ।
अयंपिमणोरमणीहिं भावियां मुणिय भव भावं ॥ ८ ॥
जह तणु दिणावसाणे मिहरो अत्थयरि सिहर मारुहइ ।
तस्स वसाण दिणंते नाण दिणिंदो तहत्थमइ ॥ ६ ॥
तं जंबु नाम नामं सुहम्म गणहारिणो गुण समिहं ।
सीस सुसीस निलयं गणहर पय पालणं वंदे ॥ १० ॥
संपन्न वर विवेयं जं गिहगय जंबु नाम वयणाओ ।
पालिय पवज्जंतं पभवायरियं सयावंदे ॥ ११ ॥
कह्ममहोपरमेयं तत्तं न मुणिज्ज इचिसो
जणा सेज्जंभवं रुवड विरत्तचित्तं नमंसामि ॥ १२ ॥
संवणिय पणय रुद्दं जसभद्दं मुणि गणाहिवं सगुणं
संभूयं सुह संभूई भायणं सूरिमणुसरिमो ॥ १३ ॥

जिण समय सिंधुणो पार गामिणो वर विवेय नावाए ।
सिरिभद्दबाहु गुरुणो हियए नामक्खरे धरिमो ॥ १४ ॥
सो कहणु थूलभद्दो लहइ सलाहं मुणीण मज्झंमि ।
लीलाइ जेण हणिउं सरहेणय मयण मायाउ ॥ १५ ॥
काम पईवसिहाए कोसाए बहु सिणेह भरियाए ।
धण्ण दढजण पयगाई जीएजो सामिओ नेया ॥ १६ ॥
सोवि अपुव्व पयंगेणं जयहरे सप्पहं पयासंती ।
पडिहणिय पहा विहिया मोह महातिमिर हरणेण ॥ १७ ॥
तस पच्छिमं चउद्दस पुव्वीणं चरण नाणसरि सरणं ।
सिरिथूलभद्द समणं वंदेहं मत्त गय गमणं ॥ १८ ॥
विहिया अणिगूहिय विरिय सत्तिमा सत्तमेण संतूलणा ।
जे अज्ज महागिरिणा समइक्कंतेवि जिणकप्पे ॥ १९ ॥
तस्स गणिहं लद्धं अज्जसुहत्थि जण पणयं ।
अवहत्थिय संसारं सारं सूरिंच अणुसरिमो ॥ २० ॥
अज्ज समुद्दं गंभीरिमाए वंदे समुद्द गंभीरं ।
तह अज्जमंगु सूरिं अज्ज सुधम्मंच धम्मरयं ॥ २१ ॥
मण वयण कायगो (गु?) भद्दगो (?गु) त्त गणनाहं
छम्मासिउविसजूव भावओ गहिय पवज्जो ॥ २२ ॥
धणगिरिणो नंदाए तणओणग (र) णहयरिंद पहुपणओ
पढमुप्पत्ति पयंपिव संवेग सिरीए संविग्गो ॥ २३ ॥

सिरि अज्जसीहगिरिणो गुरुणा विहिओ गुणाणुरागेणं ।
सेस जईणं लहुओ विज्जोगुरु नाणदाणेणं ॥ २४ ॥
उद्धरिया जेण पयाणु-सारिणा गयण गामिणी विज्जा ।
सुमहा पयन्न पुव्वाओ सव्वहा पसम रसिएणं ॥ २५ ॥
सुर राय चाय विज्जमभमुहा धणुमुक्क नयणबाणाए ।
कामग्गि समीरण विहिय पत्थणा वयण घडणाए ॥ २६ ॥
लद्धंग घईद्वाए सिद्धि सुयाए विसिट्ठ चिट्ठाए ।
गुण गण समणाओ जेसि दंसणुक्कंठिय मणाए ॥ २७ ॥
निय जणय दिन्न धण कणग रयण रासीए जो न कण्णाए ।
तुच्छंपि मुच्छिओ जोव्वणेवि धणियं गुणड्ढाए ॥ २८ ॥
जलण सिहाओ माहेसरीए कुसुमाणि जेण आणेउं ।
तच्च नीयाणमाणो मलियो संपुण्णई विहिया ॥ २९ ॥
दुब्भिक्खंमि दुव्वालस वारसीय सीयमाण संघंमि
विज्जा बलेणमाणिय मन्नं जेणन्न छिन्नाओ ॥ ३० ॥
नमह दस पुव्वधरं धम्मधरा धरण सेसमणि विरियं
सिरि वइर सामिसूरिं वंदे थिरयाइ मेरु गिरिं ॥ ३१ ॥
निय जणणि वयण करणंमि उज्जओ दिट्ठिवाय पढणत्थं
सुगुरु समीवंमिगओ ढढ्ढर सद्दाणुमग्गेणं ॥ ३२ ॥
सद्दाणु सारओ विहियं सयल मुणि वंदणोय जो गुरुणा ।
अकयाणु वंदणोसा वयस्स एवं समणु भणिमो ॥ ३३ ॥

को धम्म गुरूतुम्हाण मेत्थ तेणावि विणय पणएणं ।
गुरुणो निदंसिओ सो ढड्डर सड्ढो वियड्ढेणं ॥ ३४ ॥
अकगुरु निण्हवेणं सूरि सयासंमि जिणमयं सोउं ।
परिवज्जिय सावज्जं पव्वज्ज गिरि समारूढो ॥३५॥
सीहत्ता निक्खंतो सीहत्ताएउ विहरिओ जोउ ।
साहिय नवपुव्व सुओ संपन्न पसन्नसूरि पओ ॥३६॥
सुरवर पहुबुद्धेणं महाविदेहंमि तित्थनाहेणं ।
कहिउं निगोय जीवाण जाणओ भारहे सूरी ॥३७॥
जस्स सयासे सक्को मोहण रूवेण पुच्छइ एवं ।
भयवं फुड मन्नेसिय मह केत्तिय माउयं कहसु ॥३८॥
सक्को भवंति भणिओ मुणिउं जेणा उयप्प माणेणं ।
पुट्ठेण निगोयाणं पिवन्नणा जेण निदिट्ठा ॥३९॥
हरिणा हरसिय चितेण संथुओ जो तवो महासत्तो ।
जेण समयंमि ठवणा विहियागुण पक्खवाएणं ॥४०॥
तं सूरिमज्ज रक्खिय मक्खय पय पावणंमि पाणीणं ।
पहिहत्थ मतुच्छ महं वंदे निद्दलिय दुरिओहं ॥४१॥
विहिय जिण समय सम्मय सुदेसणा जणिय जणमणाणंदा ।
अण्णेविचरणगुण रयण जलहिणो जे जए जाया ॥४२॥
परवाइ वार वारण वियारणा जे मियारणो गुरुणो ।
ते सुगहिय नामाणं सरणं मह हुंतु पणय पया ॥४३॥

अन्नाण नीर पउरे सन्ना संसार सायरे पडिया ।
करुणाए जेहि ठविया जिण पवयण जाणवत्तंमि ॥४४॥
पालियसीलंगाणं संगहिय समग्ग समय साराणं ।
चउदय सय पगरण देसणेण संपन्न कीत्तीणं ॥४५॥
जिणसमय संजयाणं मुद्दाकिरिया परूविया जेहिं ।
तेणमहंतेसि नमो हरिभद्द मुणीसराणंपि ॥४६॥
आयार वियारणवयण चंदिमा निहय मोह तिमिर भरे ।
सीलंको हुयण नहंगणंमि हरिणंक संकासो ॥४७॥
तं तिहुयण पहुपय-कमल जुयलभसलं भवारि विहियभयं ।
जीवाणमभयदाणंमि पच्चलं निच्चलं वंदे ॥४८॥
सुपसत्थ वीर जिण तित्थ संभवो भव्व जण मणोहरणो ।
सिरि वद्धमाणसूरी जोग पसंगोतयं वंदे ॥४९॥
पुरओ दुल्लह महिवल्लहस्स अणहिल्लवाडयपुरंमि ।
सुविहिय विहार पक्खो पयडीओ समय जुत्तीए ॥५०॥
अपडिबद्ध विहारेण विहरिया जे पणट्ठ पडिवक्खा ।
ताणं जिणेसर सूरीण संपयं पणिवयामि पए ॥५१॥
सिरि सूरि जिणेसर वयण पंकए महुयरव्व जे लीणा ।
नाण गुण लद्धि निलए आसाइय समय मयरंदा ॥५२॥
सिरि वीर जिणेसर समय रयण कोसोवएस रयणाई ।
पुणपरिवज्जिएहं कयाइनो पन्न पुव्वाइ ॥ ५३ ॥

कय करणाहिं काउं नवंग विसीउ बोहि दिन्नाई ।
अविवेय रोरयालिंगियाण जंतूण बिय लोए ॥५४॥
जइ केइ नाण चरणेहिं सालिणो आगमेसिणो गुरुणो ।
संपइ पुण त गुण तुल्लयाए लोए न दीसंति ॥५५॥
भव कूप निविडियाणं पाणिणं पाणिदाण तुल्लख्यिा ।
सिरि अभयदेव गुरुणा विवरण करणेन विक्खाया ॥५६॥
नाण महुपाण लालस सुसीस भसल उल संकुले विमले ।
तेसि महं तिकालं चरणंबुरुहे पणमयामि ॥५७॥
जे समय पाढया समय जाणया समणभासवा सम्मं ।
समए समएण समं मुणिऊण कुणंति किबा ॥५८॥
कालाइणं भवणं भवियाण विबोहणं भवविणासं ।
तेसि महं नाणीणं तं नाण गुणं पणिवयामि ॥५९॥
जेसपरपक्खविसयं देव गयं गुरुगयं च मिच्छत्तं ।
सुहगुरु संपत्तीए मोत्तुं सम्मत्त मणुपत्ता ॥ ६०॥
निस्संकियाइ गुणरयण रोहणं दोस पणग परिहीणं ।
निरुपम सुहतरुपीयं दंसण मिणमो पणिवयामि ॥६१॥
इरिया समियाईणं पणगं मण वयण कायगुत्ति तियं ।
कुडुंतर वसहिंदिय निसिज्ज कह पुव्व रमिएहिं ॥६२॥
पणिया परमिय भोयण विभूसणादोस दूसियं जएणे ।
तेसिं सिव सिरि सरणं चरणं तिविहेण पणमामि ॥६३॥

वज्झाब्भंतर दुद्धरतवो विहाणुजयाय जिणधणियं ।
समयाणुसारि किरिया पवत्तिनिरयानमोतेसिं ॥६४॥
भत्तं पाणं वत्थं वसहिं च विसोहिऊण जयणाए ।
निय सत्ति पयडंता विहरंति सया नमो तेसिं ॥६५॥
इय जे पंच पयारं आयारं आयरंति आयरिया ।
उवज्झायाविय जे केइ साहुणो तेसि पणमामि ॥६६॥
पुढवाइं जीव नवभेय जाणए देसएयतत्ताणं ।
सयमेव पालणाए कारएय समयाणु वित्तीए ।६७॥
आउट्टि दप्प कप्पप्पमाय परियाणए जिणाणाए ।
अणवज्ज भासणे सई समुज्जए चरण करणेसु ॥६८॥
पुव्वाच्चरेण मुणिउं अवचल चित्तेहिं समय सुत्ताई ।
दव्वाईणं भणिया पक्खा निरवेक्ख सावेक्खा ॥६९॥
पत्तमपत्तंनाउं कुणं जे देसणं महासत्ता ।
मग्ग पवन्ना मग्गंमिट्ठावणाठाइ पाणीणं ॥७०॥
जे दुज्जण दुव्वयणं सोउणनमाणसं मि ठावेंति ।
फरु संभणियाविन जे परप्प (प्फु) संमि वड्ढंति ॥७१॥
जइ कहवि पमाय वसा सम्मं सयमेव नो पयट्टंति ।
तहविहु जिणाभणियं जहठियं जेयरूवेंति ॥७२॥
उप्पएण परमकरुणाहि जेहि मइ कम्मसत्तुणो सव्वे ।
पडिहय पसराउकया देउं चउरंग बलममलं ॥७३॥

उम्मग्गओ मग्गंमि ठाविति सुगुरुसंठिएहिं य ।
सिरिधम्म गुरूण मई तेसिं वयणे पणिवयामि(मि) ७४
इय सुहगुरू गुण संथव सत्तरिया सोमचंद जुन्हव्व ।
भव भक्खर ताव हरा भणिज्जमाणा लहुं होउ ॥७५॥

* इय सुगुरु गुण संथव सत्तरिया समाप्तः *

श्रुतस्तव

निम्महिय मोहमाएण कणय कायण विगयराएण ।
उवलद्ध विमल केवल नाणेण विसुद्धझाणेण ।
लोया लोयं मुणिऊण जेण तित्थप्पवत्तण खणंमि ।
चउविहं देव विणिम्मियउ सरणे तिजय जिय सरणे ॥२॥
सरणागय जणरक्खण खम विरइय पवर वयण लक्खेण ।
सम्मंजिण वीरेणं भवद नीरेण धीरेण ॥३॥
सयमिछ पसत्था आ पयासिया अत्थउ गणहरेहिं ।
विहिया दुवालसंगी सपरेसि सुत्तउ विहिया ॥४॥
तत्थायारो रोविय पंच विहायार वत्थु वित्थारो ।
वित्थारिया मुणि गणि गणसारो संसार मयहरउ ॥५॥

सूयगडो सुत्तिय सुत्त सियबद्धोपवर वयण फल गमउ ।
भव जलहि पारगामी वसहइ सत्ताण पोउव्वा ॥ ६ ॥
नीसेस पयत्थाण ठाणं ठाण पहाण मिह नाणं ।
वंदेह समवायं पडिहय संदेह समवाय ॥ ७ ॥
तं नमह पंचमंगं जं नमिउं पंचमंगइं जीवो ।
पावइ पाव खयाउ भगवइ नामं च नामं च ॥ ८ ॥
नायाधम्म कहाउ कय भव विरहाउ निहय वाहाउ ।
हरिसुल्लसंत पुलउ वंदेह सुवासगदसाउ ॥ ९ ॥
तह अंतगडदसाउ अणुत्तरोवाइयाण दसाउ ।
पण्हावागरणंगं जयइ जणे जणिय भवंभंगं ॥ १० ॥
सुह दुह विवाग सूयग मित्तोदसमं विवाग सुयमंगं ।
इयसेण दुट्ठ दिट्ठि प्पवाय सह दिट्ठिवायंच ॥ ११ ॥
उप्पाय सुद्ध मग्गेणियं च विरियाणुवाय मिह तइयं ।
अत्थिनत्थिपवायं नाणपवायं च पंचमयं ॥ १२ ॥
सच्च प्पवाय माय प्पवाइ कम्मप्पवाय मठ मयं ।
पच्चक्खाणं विज्जाणु-वाय कल्लाण नामंच ॥ १३ ॥
तह पाणाउं किरिया विसाल मइ लोग बिंदुसारं च ।
उवाइय रायपसेणइज्ज जीवाभिगम नामं ॥ १४ ॥
पण्णवणोवंग सूरचंदपण्णत्ति जंबू पण्णत्ति ।
वंदामि निरियावलिया सुयखंधं चेह पंचण्हं ॥ १५ ॥

इह जे जिण वीरेणं सयं चपव्वाविसाय सिस्सविया ।
तेहिं कयाइं च उदस सहस्साणि पइण्णगाणं च ।। १६ ।।
दसवेयालिय मावस्सयं च तह ओह पिंड निज्जुत्ति ।
पज्जुसण कप्पववकप्प कप्प पणकप्प जियकप्पो ।। १७ ।।
वंदे महानिसीहं उत्तरज्झयणे वायग कयाणि ।
पसमरइ पमुह पयरण पंचसयाइं महत्थाणि ।। १८ ।।
जुगपवरागम हरिभद्दसूरि रइयाणि चउदस सयाणि ।
सद्धम्म सत्थमत्थय मणिपयरण पभिइ चित्ताणि ।। १९ ।।
नंदि मणुउगदरप्प सुहं सुत्तं मित्थ सुमहत्थं ।
अत्थि सुपसत्थ वित्थर भणण समत्थं पसत्थं च ।। २० ।।
आसज्जतं मणवज्जं जुगपहाणागमेहिं सूरिहिं ।
गुणगण भूरीहिं कयं वंदे तं पयरणाइं वि ।। २१ ।।
जुगपवर गुरु जिणेसर सूरीहिं अभयदेव सूरीहिं ।
सिरि जिणवल्लहसूरीहिं विरइयं जमिह तं वंदे ।। २२ ।।
कलिकाल कुमुइणी वणसंकोयण कारि सूर किरणव्व ।
इह सुत्तासुत्त पया व भासणुल्लासिणो जेसिं ।। २३ ।।
ठाणट्ठाण ट्ठियमग्ग नासि संदेहि मोह तिमिर हरा ।
कुग्गहि वग्ग कोसिय कुल कवलिय लोयणालोया ।।२४ ।।
तेहिं पभासियं जंतं विहडइ नेय घडइ जुत्तीए ।
वंदे सुत्तं सुत्ताणुसारि संसारि भय हरण ।। २५ ।।

गुरु गयणयल पसाहण पच्च पहो पयडिया समदि सोहो ।
इय सिव पह संदेहो कय भव्वंभोरुह विवोहो ॥ २६ ॥
सूरूव्वसूरि जिणवल्लहीय जाउजए जुगपवरो ।
जिणदत्त गणहर पयंत प्पय पणयाण होइ फुडं ॥ २७ ॥

* इति विश्रुतश्रुतस्तव समाप्तं *

सर्व जिनस्तुति

शक्तो जिनस्तुतिकृतौ न सुदेवसेव्यः
शक्रोपि कस्तदपरः प्रकरोतितांस ।
यद्वा जिनस्तुतिकृतेः किलकेवलश्री ।
लाभोभवत्यपि वसावभवेच्च सेव्यि ॥१॥
श्रीनाभिजात मजितं जिनसम्भवञ्च ।
वन्देभिनन्दनजिनं सुमति जिनेशं ।
पद्मप्रभंशुभकृतेस्मिनतः सुपार्श्वं ।
चन्द्रप्रभं च सुविधिं जिनशीतलञ्च ॥२॥
श्रेयांस मीशमनघं जिनवासुपूज्यं ।
भक्त्यानमामिविमलं जिन मर्घनन्तं ।
धर्म्मं च शांतिजिनं कुंथुमरिंचं मल्लिं ।

श्री सुव्रतं नमिजिनं च सनेमिपार्श्वं ॥३॥

वन्दे जिनं गुण गुरुं गुण वर्द्धमानं ।

सूरिं जिनेश्वर मिहा भयदेवमेव ।

याचेतनोतु जिन वल्लभ मादरेण ।

ज्ञानादिमेक जिनदत्त हितंतु देहि ॥४॥

* सर्वजिन स्तवनं तु जिनदत्त सूरिकृतिमिदं *

आरात्रिक वृत्तानि

लोणंण पिछिय सुनाण सलोणायत्तं मत्तो परोवि किमिहत्थि जणेसलोणो ।

अप्पा जलंत जलणस्स सुहम्मिखितो खारा नियोनय तहाविहु तेणचित्तो ।१।

लोणं न होइ इह तेसि कयाइ जेसि गीयत्थ सत्थ गुरुणो वयणेण सम्मं ।

सन्नाण पूयण निमित्त मिहत्थिवित्तं उत्तारिउण लवणं जलणे खिवंति ।२।

लोणं जियंव वरनाण सलोणयाए जीवामि नाह मिह जेणु दयाउ जायं ।

चित्तेधंस्तुमयिनत्थि गुणोजियंते तासं पयंमि सरणं ममहोउ वह्नि ।३।

नाणतु जत्थ न अइंतम्मि हत्थि तत्थ तत्थजओ जइ मिमं निसुणंतु लोया ।

पासेसु तेण भमिउण भएणतस्सवह्निं पिसाहइ जइंजइ भाव वत्ति ।४।

ठाणाम्मि ठाइ न कयाई समुन्नयंमि निएठिइं कुणइ जेण सया गयंतु ।

नाणे समुन्नय तमे भमिऊण तेण सव्वं जइं जइ मिमं जलणे गयजं ।५।

कुग्गाइ आण मिइ जं नहु तस्सइणं चित्ते गयाइ सुइ हेउ ठविज जेण ।
एवंतु तेण भमिऊण विनायपासे सातं गयं ब्रल महोबलिए सिहिंमि ।६।
नाणं जिणेइ नहु तेण विणावरोवि आरत्तियं तियजुउ सकिलेस हाणी ।
काउण सोविपुण पावइ केवलित्तं हुआ निरंजण पए परमेसरोवि ।७।
नाणंतु दंसण मओ चरणं पसिद्धं सारत्तियं जिण मयंमि सदुत्तरंमि ।
तंजेसिनत्थि अरइत्ति नत्थितंपि उत्तारिउं तदणुदिंति जलणस्सधारं ।८।
आएविणं मिय मिणं पण दीवियाहिं चारत्तियं भमई सावग भामियंतु ।
नाणं पणासयमिमं चिय पंच भेयं दीविउ पंच पुण तत्थ हवंति तेण ।९।
दीवोविनाणपुरओ सथओ सुवहि नासेइ जोवितिमिरं बहिरंतरंगं ।
तित्थस्स मंगल कए विहिओ हियाय हुज्जासया दुइ हरो सुहकार ओय १०
जं मंगलत्थ मइकीरइता कहंसो उत्तारिउण पुरओवि ठविज्जइत्ति ।
जं मंगलंपि न भवे लवणं जइं व तस्सोचियं सुहमुहं जलधारदाणं ।११।
भोयावि मंगलमिमं पुरओ धरंति सेयो निमित्त मियरं न तहा ठवंति ।
उत्तारिउण जलणंमि खिवंति तुहा जो नत्थ हेउ तस्सजलंपिदिंति ।१२।

* इति (लू?) नारात्रिक वृत्तानि समाप्तानि
कृतिरियं श्री जिनदत्तसूरिरिति *

सप्रभाव स्तोत्र

मम हरउ जरं मम हरउ विभ्रमं डमर डमरं हरउ ।
चोरारि मारि वाही हरउ ममं पास तित्थ यरो ॥१॥
एगंतर निच्चजरं वेल जरं तइय सीय उण्ह जरं ।
तईअ जर चउत्थ जरं हरउ ममं पासतित्थयरो ॥२॥
जिणदत्ताणा पालण परस्स संघस्स विहि समग्गस्स ।
आरोग्गं सोहग्गं अपवग्गं कुणउ :पास जिणो ॥३॥

(इति श्री जिनदत्तसूरि युग प्रधान कृतम्
सप्रभाव स्तोत्रम्)

विंशिका के प्राप्त श्लोकत्रय

इतोऽप्य भयदेवाख्य सूरेः श्री श्रुतसम्पदम् ।
समवाप्य ततो मत्वा चैत्यवासोऽस्ति पापकृत् ॥१॥
श्री मत्कूर्चपुरीय श्री सूरिजिनेश्वरस्य शिष्येण ।
जिनवल्लभेन गणिना चैत्य निवासः परित्यक्तः ॥२॥
कृताज्ञि गणभद्रेण देव भद्रेण सूरिणा ।
श्री चित्रकूट दुर्गेऽस्मिन् सोऽपि सूरिपदे कृतः ॥३॥
(गणधर सार्द्धशतक (गा० ८४ की) बृहद् वृत्ति से)

शान्ति पर्व विधि का अन्तिम श्लोक

देवाहिदेव पूआविहि इमो भवियगुग्गहट्ठाए ।
उपदिशति श्री जिनदत्तसूरिभि राम्नायतः सद् गुरोः ॥

ग्रंथा ग्रं० २६६

परिशिष्ट नं० ३

(१) श्री जिनदत्तसूरि छप्पय

जो अमाणु सिरि वद्धमाणु मण माण विवज्जिउ;
सिद्धि पुरंधिनि वद्धमाणु भव पंजरु भंजिउ।
लोयालोय पयासणिक्क गुरु भुयण दिवायरु।
सो जिणिंदु नय अमर विंदु वंदित्ति करुणायरु।
संथुणहि वीर जुगपवर गुरु गुरुभावहं संठविय मणु।
जिणसासण गयणंगण तरणि सिव पह गमण महासमणु॥ १ ॥
अमल कमल दल नयण सरय पुन्निम ससि निम्मल।
सहइ करग्गह पुरउ जासु सयविय सित्तुप्पल।
उम्मिलंति दलावलीए परि भमिरा:लंकिर।
भणु भणंत अलि उल समूह मयरंद कंखिर।
तिणिसम्मि देवि सुब रयण निहिंवाएसरि संतुट्ठिय।
महुकव्व सत्ति उच्छलउ गुरु गुण संठवणि जहट्ठिय॥ २ ॥
रत्तउ पेच्छइ सगुण विगुण पेच्छइ जु विरत्तउ।
सो न सुद्ध धम्मत्थि नमइ कुग्गह मय मत्तउ।
सगुण दोस दोस गुण मूढ मोहन्धसु पेक्खइ।
गणइ न भउ संसार तणउ सो कत्थव लेक्खइ।

गुण वज्जिउ गुणि दूसण पउणु लोय पवाहह पत्थिउ ।
सो नरय नयर पह गमण भइ भमइ करंतउ सत्थिउ ॥ ३ ॥
सो धम्मिउ जुअ रत्त दुट्ठु पेच्छइ निय बुद्धिहिं ।
मज्झ भावि गुण दोस मज्भु बुज्झइ सुविसुद्धिहिं ।
हेउ जुत्ति दिट्ठंति सुत्ति सुपरिक्खिवि याणइ ।
कणउ जेम कणयारु कसण गुणि णिम्मलु जाणइ ।
तिम धम्मिउ भवभय भीरु मइ दोस छड्डि गुणि लग्गई ।
उस्सग्ग उववायंतरिट्ठियह सहु सिवसिरि वरु सग्गइ ॥ ४ ॥
दीसहि सूरि वहुत्ति सुविहि माहप्पु सलीसहि ।
पर सुत्तत्थ समत्थणंमि सामत्थु न दीसइ ।
समई वियप्पि विसमय अत्थु उस्सुत्तु सुणावहिं ।
पाइहिं स परु भवम्मि मुद्ध जुगपवरु भणावहिं ।
जस किंत्ति निमित्तु जितउ तवहिं जि ईसर छंदउ ।
ते अविहि सूरि वी रुल्लवई भविउ कयावि म वंदउ ॥ ५ ॥
केवि जंपहिं रयणिहिं पइठ मज्जणु पव्वावणु ।
किवि जिण बिंब पयट्ठ भणहिं सावय सुह कारणु ।
केवि उवासग पडिम मूल सुत्तेण वहावहिं ।
बहु आयरण पवाहि पडिय चेइय वंदावहिं ।
पूइज्जहिं मुद्धेहिं सुविहि भणि जुगपवरत्तु पयासहिं ।
ते संपई मूल गुणम्मि ठिय जिम जमालि तिम भासहिं ॥ ६ ॥

भवियहु पेच्छहु दुसह मोह माहप्पु फुरंतउ ।
दसमच्छेरय वसिण लोउ ठगिउव्व नियंतउ ।
जं भणंत्ति जिण आण हीण गुरु अविहि परूवग ।
तं तहति पडिवज्जयंति वियरंति न मूयग ।
अन्नाण तिमिर छाइय नयण तत्त अतत्त भणंति जणि ।
ते कोसिउव्व गुणि गुरु तरणि गुण अइ ठत्तिं दोसमणि ॥ ७ ॥
जे भणंति किर समई हुँति वे तिन्नि मुणीसर ।
जुगपहाण सिद्धन्ति दिट्ठ गुण रयण मणीसर ।
तं उस्सुत्तु जंपंति मूढ परलोय न पीहहिं ।
जं जंपिउ सिरि मह निसीहि पर मय करि सीह हिं ।
तित्थयर सरिसु किर होइ गुरु जुगपहाणु न बुइज्जउ ।
गुण मणि समुद्दु विज्जा निलउ पुव्व पुञ्जु भव वज्जउ ॥ ८ ॥
सयल सत्थ परमत्थ सुणण अहिणव वाएसरि ।
विज्जा मंत महोहि दुग्ग कुग्गह करि केसरि ।
सम्मं नाण चरित्त रयण निहि धीरिमहिरि ।
अममु अकिंचणु असमु भमइ संठियउ जु गुरु गिरि ।
इय गुणाहि कलिउ जुगपवर गुरु संपइ सुयउ न इत्थुधर ।
जिणयत्त सूरि सुर किन्नरेहि नगिइ बुद्धनउ सुयउ पर ॥ ९ ॥
जो सुर गुरु सिरि वद्धमाण वंसइ मोत्ता मणि ।
पणइ यण मण वंछियत्थ पूरण चिंतामणि ॥

जो पंच सरसु दुन्निवार वारण समरेसरु ।
सञ्चारित्त अरिन्न कणय संचयह गिरेसरु ।
सो नमहु सूरि जिणदत्तपहु जुग पहाण लच्छिहि तिलउ ।
तिलउ व्वसु पत्तिहि परियरिउ समण सुसमणेसर निलउ ॥ १० ॥
जो दुल्लक्ख लक्खणह लक्खु लक्खणह सुलक्खणु ।
सरवण सुद्ध सिद्धंत तत्त देसण सुवियक्खणु ।
छप्पमाण अपमाभाण जलहि अवगाहण जलयरु ।
सयल छंद वायरण कोसु गुण मणि रयणायरु ।
जुगपवर सूरि गुरु गरुय गिरि गिरि उद्धरण सहस्स फणु ।
सो नमहु सूरि जिणदत्त गुरु गरुय भावि थिरु करिवि मणु ॥ ११ ॥
दूसम दमनी रहरुदुसह भसभग्गह मयहरु ।
हुँडवसप्पिणि सप्प गरुड संजम सिरि कुलहरु ।
निव्व वाइ मयमत्त दंति दारण पंचाणणु ।
गुरु सावय समणेस समण आसेवण काणणु ।
जुगपवर सूरि जिणवल्लहह जो आणा करु गणहरु ।
सो सरहु मगुरु संसउ करहु जो भवियह भव भूरिहरु ॥ १२ ॥
जसु सन्नाणु अमाणु मणइ विप्फुरइ फुरंतउ ।
पर कवित्त सुकइत्त बंध विरयइ जु तुरंतउ ।
जो निम्मल चारित्त रयण संचय रयणायरु ।
मिच्छ तिमिर तमहरणु तत्तपायडण दिवायरु ।

भावारि महीरुह मत्त करि करण चरण संजम सहिउ ।
तहु वीर पदं पय अणुसरहु सगुण गणिहि जो अविरहिउ ॥ १३ ॥
रई जंपई सुणि कंत मुणउं हउं तुज्झ परक्कमु ।
करि धणुवरु जइ करहि जिणहि वंभिहि तुति विक्कमु ।
हरु महु सरणु पइट्ठु दुसह तुय बाण न करंविउ ।
कुकुन कंत तय लोइ जु तुय वाणिहि नवि डंविउ ।
जिणदत्त सूरि ज्झाणानलह परिभमंतु जइ पिढ़ि पडिसि ।
ता वारिउ अत्थहि मयण महु अहव मयणु जिव्वगलि पडिसि ॥१४॥
जे जण सव्वु सावज्जु तिविहु तिविहेण परिचत्तउ ।
सयल जंतु उद्धरण मूल संजमु आदत्तउ ।
जिणिअ सव्व तरुवरु संमूलु मूलह उल्लूरिउ ।
तिविहोवि जेण अदत्तु चत्तु दुह पंजरु चूरिउ ।
सुर नर तिरिछि संगम रहिउ परिग्गह सव्वयह ।
निरयार सूरि जिणयत्तु पर रक्खइ पंच महव्वयह ॥१५॥
तेय वंतु नहु तरणि तरणि भव सिंधु पडंतह ।
विज निवासु निसिद्धु सिद्धु गुरु मंतु सरंतह ।
जो संजम सिरि तिलउ तिलउ नहु जड परिवज्जिउ ।
देसण घण गंभीर वाणि नहु वाणि विवज्जिउ ।
रंजिय समग्ग गुण गरिम गुरु सयल जंतु······

[अपूर्ण, जेसलमेर भांडागारीय ताडपत्रीय प्रति से]

कवि सूरचंद्र कृत

(२) जिनदत्त सूरि गीतम्

आसापूरण कामगवी, भवियंबुज बोधन चारु रवी ।
'जिनदत्तसूरि' गुणतवउकवी, जिम दीपतिनितु नितु अधिक छवी ।१।
श्री खरतरगच्छि गुरू राजइ, जसु महिमा महीयलमहि गाजइ ।
'जिनवल्लभसूरि' पटि छाजइ, पयपंकय पणमउहित काजइ ।।२।। आ०।।
संवत 'इग्यारह सुपरइ, बत्तीसइ' जनम्या रयणि भरइ ।
मंतीसर 'वाछिग' नाम धरइ, अवतरिआ 'बाहडदे' उयरइ ।।३।।आ०।।
'इगतालइ' वयगहण करइ 'गुणहुत्तरि' पाटइ राजवरइ ।
'माहवबदि छठि दिनि सुथिरइ, सुरदानव मानव पायपरइ ।।४।।अ०।।
'अंबड' सावगलिहिय करइ, सिरि 'अंबा' सोवन मय अखरइ ।
वांची प्रगटिउ एणि अरइ, वरजुगवर महीयलि पुणभरई ।।५।।आ०।।
ततखिणि 'दिल्ली' नामपुरइ, जसु चउसठि योगिणी वर सुवरइ ।
ग्राम ग्राम प्रति प्रथम वरइ, इक उदयी श्रावक तिमनगरइ ।।६।।अ।।०
खरतर श्रावक सधन घरइ, तिम खरतर कुमरणि कदिन मरइ ।
खरतर यतिनी पुष्पुटरइ, गुरु नामइ साइणि थी न डरइ ।।७।।आ०।।
गुरु समरण विजुरीन परइ जो सिंधिवसइ सोवन ऊधरइ ।
ए वर सात वरी ऊपरइ, सव जोगिणि' हरखित दुख हरइ ।।८।।आ०।।

'माणिभद्र' तदनंतरइ वलि सात सुवरए ऊवरइ ।
जो 'जिनदत्त' पटइ पसरइ, साधेवी पंचनदी सुगुरइ ॥९॥आ०॥
त्रि सहस गुणीयइ सूरि वरइ, सूरि मंत्र पवित्र निरन्तरइ ।
त्रि सहस साधु सिझाय करइ, तिम श्रावक सातेस्मरण सरइ ॥१०॥आ०
खरतर संघि सदा त्रिसती, खीचड़ य गुणेवी सासती ।
मास माहि घर घरहि प्रती, बेआंबिल करिवा सगती छती ॥११॥आ०
आतम सगतिनुसारि सदा, एकासण साधु करइ प्रमदा ।
'माणिभद्र' वरसातहुदा, सुणिभगतिइ प्रणमइ सुगुरुपदा ॥१२॥आ०॥
'चउसठि जोगिणि' जीपिकरी, जस 'बावन वीरे' आणधरी ।
सूरि मंत्र जिणि ध्यान धरी, धरणिंद सुसाध्यउ सगति खरी ॥१३॥आ०
एक लाख श्रावक श्रावी, पडिबोहीए गुरु सप्रभावी ।
सुरनर असुर सबे भावी जसु सेव करइ गुरु गुणगावी ॥१४॥अ०॥
'अजमेर, 'उजेणी' नइ 'दिल्ली' 'भरुयछइ' जोगिणी जिणिखिल्ली ।
अपर अनेक असुर पिल्ली जिणि कीरति तिहुअण मइ घिल्ली ॥१५॥आ०
संवत 'बार इग्यार' समइ, 'आसाढ इग्यारसि' सुद्ध तमइ ।
'अजयमेर' पुरि समरसमइ, श्रीजुगवर सुरवर ठाणि रमइ ॥१६॥आ०॥
जुगवर जिनदत्त सूरि गुणा, जे ध्यावइ अह निसि भवियणजणा ।
राजरिद्ध तसु सुख घणा, गणि 'सूरचन्द' हिव सफल दिणा ॥१७॥आ०

इति श्री जिनदत्तसूरि गुरुराज गीतम् ।

(पत्र १ हमारे संग्रह में)

श्री हर्षनंदन कवि कृत

(३) श्री जिनदत्तसूरि गुण छंद

॥ छन्द ॥

जोगीश्वर 'जिणदत्तं' सूरीसर 'अजयमेरु' संपत्तं ।
खरतर गच्छ सुभक्तं, पणमिड पय कमल ताह हूं नित्तं ॥ १ ॥
'बाहड़' देवी मात बखाणं, 'वाछग' मंत्रि पिता जसु जाणं ।
'हुँबड़' वंश विभूषण भाणं सो सद्गुरु सेवो सुविहाणं ॥ २ ॥
'इग्यारह इगतीसमइ' जनम दीख शुभ ध्यान ।
'इगतालइ' 'गुणहत्तरइ', प्रतप्पउ पाटि प्रधान ॥ ३ ॥

॥ छन्द ॥

किन्तु बालवइ भाव जिण लीध दिक्खा, किन्तु सहज मइ साधु सिद्धत सिक्खा
कि० सर्व शास्त्रां तणउ सार सोहउ, कि० मूल सुत्रे मिलो मन्न मोहउ ॥१॥
कि० पूज्य 'जिण वल्लभइ' पाटि दीधउ, कि० सूरि मंत्रइ अपइ सर्व सिद्धउ ।
कि० 'अंबिका' दीध सोवन्न वण्णे, कि० युगप्रधान आगउ सुवण्णे ॥२॥
कि० शाकिनी डाकिनी सेव धाइ, कि० बीर बावन्न आवइ ।
कि० भूत प्रेतां तणा क्राभं भंजइ, कि० मीर मांगो महा मन्न गंजइ ॥३॥
कि० अगम मरकी महा संकट कापी, कि० शिष्यणी शिष्य थिरआप थाप ।
कि० चमकती बीज वण चाथ चूकी, कि० कावली मंत्रि तलिथालिमूंकी॥४॥

कि० पाटला पुठो परठे पधारी, कि० योगिणी साठि अरु चार हारी ।
कि० सहम धर्मि देखि गुरु हाथ साचा, कि० आय साणी दियइ सात वाचा ॥५॥
कि० ध्यावि पद्मावती धरणि देव, कि० लाख सेवक करइ पाय सेव ।
कि० चैत्य शिव शाकिनी मारि गावउ, कि० रुद्र सिरपर ठव्यउ सोइ सावउ ॥६॥
कि० पाखण्डि प्रीत तउ प्रथम जोडी, कि० कार सेवा करामति फोडी ।
कि० 'उच्च नगर' इम उच्छव प्रवेश, कि० म्लेच्छ निर्जीव सजीव वेश ॥७॥
कि० पंच नदियां जिठइ नीर मेला, कि० नावि थंभावि मभरातति वेला ।
कि० जन्न् मांगा मिलइ हांक वीरा, कि० साधिया पंच उलंठ पीरा ॥८॥
कि० सूरि 'हरिभद्र' शुभ मन्त्र पोथी, कि० साधतां कीध निज हाथ सोथी
कि० 'चित्रकूटइ' महा थंभ चंप्पउ, कि० देव सगतइ सिला मंत्र सुप्पउ ॥९
कि० 'बार इग्यार आषाढ़' मासइ, कि० स्वर्ग सुख संपतउ शुभ निवासइ ।
कि० ध्यान धरि जेहनइ चित्त ध्यावइ, कि० ऋद्धि अठ सिद्धि नवनिद्धिपावइ १०

कलश (छप्पय)

काचवत निकलंक शील गंगेव संभारी ।
भविक भूख भावठि भीम भय भंजन भारी ॥
भगति मुगति दातार सयल संघह सुख कारण ।
अड़वड़ियां आधार पार संसार उतारण ॥
जागतउ मर्द जिणदत्तजी मेटि मेटि आपद मरण ।
कर जोड़ि 'हर्षनंदन' कहइ सुप्रसन्न होई असरण शरण ॥११॥

उपाध्याय कुशलधीर कृत

(४) जिनदत्तसूरि रास

युगवर श्रीजिनदत्तसूरि जयउ, दिनकर सम खरतर गच्छि उदयउ ।
सिधि साधक विरुद प्रसिद्ध थयउ, लखगाने पुहवी सुजस लयउ ॥१॥
प्रह उठी भवियण तेह जपउ, तप तेजइ दिन दिन अधिक तपउ ।
धन कारिण पुहवि कांइ धपउ, थिर मन करि गुरुपाय चित्त थपउ ॥२॥
घसि केसर अरु घनसार घणा, जि पूजे गुरुपाय भविक जणा ।
गुरु सानिध करि सुर असुर गणा, ते वंछित पूरवइ तासु तणा ॥३॥
जय जय जय जंपी प्रात समइ, मन सुध जे श्रीजिनदत्तसूरि नमइ ।
महाशालि दालि घृत घोलि जमइ, सुपरइ तसु वउलइ दिन सुख मइ ।४
आराहौ कांइ देवी देवा, वलि मनवंछित सुख फल लेवा ।
आगलि ढोइ अद्भुत मेवा, सुधइ मन कीजइ गुरु सेवा ॥५॥
रूपइ रति रम्भासम युवति, वलि लक्षण अंगि बत्तीस वती ।
सकुलीणी आइ मिलइ सुमती, जियां सुप्रसन्न श्री जिनदत्त जती ॥६॥
अम्बड़ करि अक्षर लिपि लाधी, धरा जुगप्रधान कीरति बाधी ।
धरणिन्द सुर मन्त्रइ आराधी, संघ कारणि पांच नदी साधी ॥७॥
जिण वसि कीधा जोगिन्द्र जड़ा, छलि जोगिणी लीधा वचन छड़ा ।
खदिरादिक सेवे पंच पीर खड़ा, वलि जीता बावन वीर बड़ा ॥८॥

दिन एकणि पनरह सइ दीख्या, शिष्य थाप्या सुपरइ दे शिख्या ।
साहुणीयइ सहस इक एम सही, दीखी श्री सद्गुरु दिन तिणही ॥९॥
प्रतिबोध्या लख सावय सावी, जगि जीव दया भ्रम जाणावी ।
बड़नगरइ श्री सद्गुरु आवी, जप ध्यान बलइ धेनु जीवावी ॥१०॥
उच्च नगरइ श्री सद्गुरु आया, पइसारइ पाटम्बर छाया ।
लोके काजी सुत लतड़ाया, जुगवर ते ततखिण जीवाया ॥११॥
गुरु जिणवल्लह पाटइ प्रगटा, वसि कीधा सुर अकटा विकटा ।
गोगा मोगा किणही जोगा, साध्या सहु जे धरता छउगा ॥१२॥
डाइणि साइणि ग्रह गण पीड़ा, गुरु समरणि रोग टलइ चीड़ा ।
वाधइ पुहवी बहु विध वीड़ा कलिमइ सुर जेम करो क्रीड़ा ॥१३॥
खिवती चपला सुपरें राखी, किरिया करतां श्री संघ साखी ।
युगवर अवदात अछे जेता, कहुँ इक रसना करिहुं केता ॥१४॥
वाछिग मन्त्री कुलि अवतरिया, धन बाहड़दे जिणि उर धरिया ।
संवत इग्यारह बत्तीसइ, जसु जन्म्या जननी शुभ दीसइ ॥१५॥
लघु वइ इकतालइ व्रत लीधउ, गुणहत्तरइ गुरु निजपद दीधउ ।
संवत बारहसइ इग्यारइ, अजमेरइ गुर सुरपद धारइ ॥१६॥
जयउ जुगवर जिणदत्त गुरुराया, नरपति सुरपति नत नित पाया ।
गुरु शकति भकति भरि गुण गाया, श्री कुशलधीर इम उवझाया ॥१७

॥ इति श्री जिनदत्तसूरि रास सम्पूर्णम् ॥

लाभउदय कृत

(५) जिनदत्तसूरि गीतम्

सद्‌गुरुजी थे सांभलो, श्री जिनदत्त सूरीस हो ।
सेवक ने सानिध करो, पूरो मनह जगीस हो ।
दौलत दो दादाजी संपत दो ॥१॥
दौलत दो गुरु माहरा, ताहरा विरुद अनेक हो ।
तो सेव्यां संकट टले एहीज दादासा थांरी टेक हो ॥ दौ० ॥२॥
जीती चोसठ जोगणी, बस कीया बावन वीर हो ।
सिन्ध मांहे तें साधिया, पंचनदी पंच पीर हो ॥ दौ० ॥३॥
पड़िकमणां मांहे बीजली, वलीय वलि झबकाय हो ।
थे मन्त्री राखी तिका, तूठी वर दे जाय हो ॥ दौ० ॥४॥
ओच्छव करतां उछव में, मूओ मूगल रो पूत हो ।
जाप करी जीवाड़ीयो, संघमें राख्यो सूत हो ॥ दौ० ॥५॥
वड़ नगर रे ब्राह्मणें देहरे घरी मृत गाय हो ।
पंच परमेष्ठि विद्या बले, पिशुन लगाया दादेपाय हो ॥ दौ० ॥६॥
विक्रमपुर व्यापी मरी, तैं दूर किया सहु दुख हो ।
परवार पिण पोते कीयो, सहुनें दीधा दादे सुख हो ॥ दौ० ॥७॥

अंबड़ हाथे अक्षरे थे प्रगट्या ततखेव हो ।
युगप्रधान जग तूं थयो, आखे अम्बिका देव हो ॥ दौ० ॥८॥
थांभो वज्र विदारिने, पोथी परगट कीध हो ।
विद्या सोवन अक्षरे, उज्जेणी मांहे लीध हो ॥ दौ० ॥९॥
इम विरुद घणा छै ताहरा, कहतां नावे पार हो ।
भाग संयोगे दादो भेटियो, अडवडीयाँ आधार हो ॥ दौ० ॥१०॥
हूँ छूं सेवक ताहरो थे आपो धन ऋद्ध हो ।
भुवनकीरति सुपसाउले, लाभउदे सुख लीध हो ॥ दौ० ॥११॥

॥ इति श्री जिनदत्तसूरि गीतम् ॥

विशेष नाम सूची ।

ख—

ग—

च—